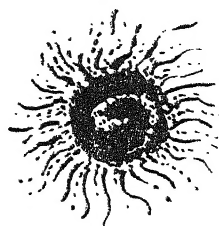


जागरण

मन्मथनाथ गुप्त



राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली

प्रकाशक :
राजपाल एण्ड सन्ज़,
पोस्ट बॉक्स १०६४, दिल्ली



कार्यालय व प्रेस :
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली



बिक्री-केन्द्र :
कश्मीरी गेट, दिल्ली

मुद्रक :
भारत मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली

मूल्य :
तीन रुपये पचास नये पैसे

JAGARAN : MANMATHNATH GUPTA : NOVEL

भूमिका

यों उपन्यासों की भूमिका एक प्रकार की विलासिता ही है। यदि किसी उपन्यास के कथानक से उसकी विषय-वस्तु स्पष्ट नहीं हो पाती, तो लेखक की पृष्ठ दो पृष्ठों की भूमिका से ही वह कैसे स्पष्ट हो पाएगी? कथानक में इतना दम होना चाहिए कि उसमें से लेखक जिस बात को सामने लाना चाहता है, वह स्वयं ही सामने आ जाए।

पर इस उपन्यास की भूमिका मैं एक दूसरे ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिख रहा हूं। जिस काल पर इस उपन्यास का ताना-बाना प्रस्तुत किया गया है, वह हमारे आधुनिक इतिहास का एक अत्यन्त गौरवमय अध्याय है। यह वह समय है जब महात्मा गांधी भारतीय राजनीति के गगन में उदित हुए और एक ही छलांग में आकाश के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुंच गए। उनके प्रकाश के आगे युग-युग की कालिमा, मानसिक आलस्य, असहायता की भावना, समष्टि के स्वार्थ के आगे व्यक्ति के स्वार्थ को प्रधानता देना, साम्प्रदायिकता, कायरता सब दूर हो गई।

आश्चर्य यह है कि बहुत कम कथाकार इस रोमांचकारी युग की ओर आकृष्ट हुए। इन पंक्तियों के लेखक का यह सौभाग्य रहा है कि उसने उन दिनों स्वयं इस आन्दोलन में भाग लिया था, इसलिए जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह एक बड़ी हद तक स्वानुभव के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। फिर भी लोग उस युग को इतना भूल चुके हैं कि एक-आध जगह उपन्यास में वर्णित बातों के लिए प्रमाण की आवश्यकता ज्ञात हुई, ऐसे स्थानों पर पादटीका में प्रमाण दिया गया है।

आशा है कि इस उपन्यास में उस युग की चहल-पहल, हलचल, आंदोलन में भाग लेनेवालों की त्याग-भावना, उनकी महानता तथा क्षुद्रता

सर्वोपरि समष्टि के सामने व्यक्ति का स्वेच्छा से पीछे हट जाना स्पष्ट हो गया होगा। महात्मा गांधी ने उस युग में जिस प्रकार राजा से लेकर रंक तक सबके जीवन की काया-पलट कर दी, वह भी इसमें दिखाने की चेष्टा की गई है।

उस युग का एक सम्बद्ध चित्र तैयार करने के अतिरिक्त इस उपन्यास में शायद एक और बात दिखाई पड़ जाए, वह है त्याग और तपस्या की प्रधानता प्रमाणित करना। कहां तक इन बातों में मुझे सफलता मिली है, यह मेरे बताने की बात नहीं।

१९० खैबरपास हॉस्टल, —मन्मथनाथ गुप्त
दिल्ली—८

जागरण

राजेन्द्र अभी घूमघामकर घर पर आया ही था कि नौकर ने कहा—बाबू जी ने आपको बुलाया है।

राजेन्द्र को पहले आश्चय हुआ, फिर उसके माथे पर बल आ गए। उसने सोचकर कहा—ऐसे ही पता ले रहे थे या सचमुच बुला रहे हैं?

नौकर ने राजदूतों की तरह स्पष्टवादिता से बचकर कहा—मुझे तो यही कहा था कि घर आए, तो मेरे पास भेज देना।

राजेन्द्र ने जाने के लिए एक कदम आगे बढ़ाया, फिर रुककर बोला—कुछ मालूम है कि उन्होंने क्यों बुलाया है?

नौकर तो क्या, इस घर में सभीको मालूम था कि बात क्या है, पर नौकर ने कहा—मुझे कुछ नहीं मालूम···

राजेन्द्र के लिए फिर तो मजबूरी हो गई, और वह यन्त्रचालित की भांति राजकिशोर बाबू के कमरे की ओर चला। मालूम होता है वे उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे, राजेन्द्र के कमरे में प्रवेश करते ही उन्होंने हाथ की पुस्तक को अलग करते हुए कहा—मैंने तुम्हारी शादी तय कर ली है। हम लोगों ने कन्या को देख लिया है। सामने फोटो रखा है। यदि तुम चाहो तो अपनी माता जी के साथ उसे प्रत्यक्ष भी देख सकते हो।

सुनकर राजेन्द्र सन्न रह गया। उसे इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। वह इतना ही जानता था कि मां कभी-कभी स्नेहवश इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहती रहती है, पर ऐसा तो वे वर्षों से कहती आ रही हैं। वह ऐसी बातों को कोई महत्त्व नहीं देता था।

एकाएक उसके मुंह से कोई बात नहीं निकली। राजकिशोर बाबू ने बेटे के मुंह की ओर देखा और उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्होंने बात

कहने में कुछ जल्दी कर दी है। बोले—बैठ जाओ। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। तुम एम० ए० पास कर चुके, अब गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने का समय आ गया। यों तुम डाक्टरेट की तैयारी करते रहो, पढ़ने का तो कोई अन्त नहीं होता। तुम्हें किसी प्रकार चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। अभी हम लोग तुम्हारे सिर पर मौजूद ही हैं।

राजेन्द्र बैठ गया, पर उसके चेहरे से यह साफ था कि जो स्पष्टीकरण किया गया था, उससे उसे तसल्ली होने की बजाय वह पहले से कहीं अधिक क्षुब्ध हो गया था। बोला—पर मैं तो शादी करने की बात बिल्कुल नहीं सोच रहा था।

राजकिशोर बाबू के तेवर चढ़ गए। वे अपने दफ्तर और घर में किसी प्रकार के विरोध या मतभेद के आदी नहीं थे। बोले—इन मामलों में सोचना मेरा काम है न कि तुम्हारा।—कहकर उन्हें फिर अनुभव हुआ कि शायद कुछ अधिक सख्त बात कह गए, बोले—अब तक हम लोग ही तुम्हारे विषय में सोचते आए हैं, और तुम देख रहे हो कि उसका नतीजा बराबर अच्छा ही रहा। हमने तुम्हारी शिक्षा के लिए कुछ उठा नहीं रखा, और तुम भी बहुत अच्छे छात्र साबित हुए। तुमने एम० ए० अच्छी तरह पास किया और मुझे आशा है कि तुम समय पर डाक्टरेट भी प्राप्त कर लोगे।

राजेन्द्र ने पता नहीं इन बातों को सुना या नहीं। वह बोला—आप और जो कुछ कहें, उसे मैं करने के लिए तैयार हूं, पर किसी दूसरे के जीवन को अपने साथ बांधने की योग्यता मैं अपने में नहीं पाता और न मुझे इस समय ऐसी इच्छा ही है।

राजकिशोर बाबू ने सामने पड़ी किताब को उठाकर फिर उसे मेज़ पर रखा और तैश में आकर बोले—तुम्हें कुछ नहीं करना है। सारा बोझ हम लोग उठाएंगे। यदि तुम यह समझते हो कि बहू के यहां आकर रहने में तुम्हारी पढ़ाई का हर्ज होगा तो उसका बन्दोबस्त कर दिया जाएगा। अब शादी किसी तरह नहीं टल सकती।

राजेन्द्र सोच रहा था कि पढ़ाई का बहाना करेगा, पर वह भी खतम हो गया। किसी भी हालत में वह शादी नहीं कर सकता था। पर कैसे इस

बात को कहे यही समस्या थी। घुमा-फिराकर कहने का कोई रास्ता ही नहीं छूटा। एक मिनट तक बाप और बेटे के बीच में कष्टकर सन्नाटे का वातावरण रहा, फिर राजेन्द्र ने निर्णयात्मक लहजे में कहा—मैं किसी भी हालत में इस समय शादी नहीं कर सकता पिता जी।

राजकिशोर बाबू को इस प्रकार की किसी बात की आशा नहीं थी। उनका चेहरा पहले तो पीला पड़ गया, फिर वे क्रोध से लाल पड़ते हुए बोले—तो क्या वह बात सच है, जिसे मैं कुछ दिनों से सुन रहा हूं ?

राजेन्द्र कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बिना यह पूछे कि वह कौन-सी बात है, बोला—हां, वह बात सच है। अपने देश को स्वतन्त्र करने की चेष्टा करना कोई गलत बात नहीं है और अब ऐसा समय आ पड़ा है कि इस कर्तव्य को किसी भी बहाने से टाला नहीं जा सकता।

राजकिशोर बाबू भी एकाएक उठ खड़े हुए। पता नहीं वे क्या सोचकर उठे थे, पर इतने में कहीं से तीर की तरह तेजी से राजेन्द्र की मां उषादेवी आ गईं और किसीके कुछ कहने के पहले ही वे अपने बेटे से बोलीं—अभी तुम जाओ। हम लोग वचन दे चुके हैं। शादी करने पर भी देशसेवा की जा सकती है, तुम सोचकर जवाब देना।

राजेन्द्र समझ नहीं पा रहा था कि इस परिस्थिति से कैसे छुटकारा होगा, इसलिए जिस प्रकार से हो रास्ता पाते ही वह भाग खड़ा हुआ। पर राजकिशोर बाबू आगबबूला होकर कहने लगे—मेरा खानदान हमेशा से राजभक्तों का खानदान रहा है। मेरे पिता रायबहादुर थे, मैं रायसाहब हूं और किसी भी समय सी० आई० ई० हो सकता हूं और यह कहता क्या है कि देशसेवा करूंगा। क्या हम लोग देशसेवा नहीं करते ? इस समय देशसेवा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि राजभक्ति की जाए। ब्रिटिश शासन में भारत की कितनी अधिक उन्नति हुई है !···

न मालूम राजकिशोर बाबू और क्या-क्या कह गए, पर उषादेवी ने कहा—अभी लड़के की उम्र क्या है ? किसी तरह शादी तो हो जाने दो, फिर सब ठीक हो जाएगा।

फिर भी राजकिशोर बाबू आसानी से शान्त नहीं हुए। वे देर तक बड़बड़ाते रहे। अन्त में जब शान्त भी हुए, तो पत्नी से बोले—शादी करे

या न करे इसने देशसेवा के नाम पर जो धींगामस्ती शुरू की है, उसे बन्द करे। फिर मैं रायबहादुर को मुंह कैसे दिखाऊंगा ? मैंने तो शादी की बात पक्की कर ली थी।

उषादेवी ने समझाया—आजकल ज़माना ही ऐसा है। पहले मां-बाप जो कुछ कह देते थे, लड़के उसे अवश्य मानते थे, पर अब तो शायद ही कोई लड़का मां-बाप की बातों पर चलता हो। रायबहादुर स्वयं कितने अच्छे आदमी हैं, पर उनका लड़का कुलभूषण बुरी संगत में पड़कर शराब पीता है, इसके अलावा और भी बातें सुनी जाती हैं।

राजकिशोर बाबू अफसोस के साथ बोले—शराब पीना बुरी बात ज़रूर है, पर अपनी जवानी में किसके पैर कुछ ऊंचे-नीचे नहीं पड़ते ? स्वयं राय बहादुर साहब अब सत्तर चूहे खाकर हज को गए हैं। पर ज़िम्मेदारी पड़ते ही सब ठीक हो गया। न शराब पीना रहा न कोठों पर जाकर कव्वाली सुनना······। अगर राजेन्द्र शराबी और दुश्चरित्र होता तो उससे मुझे कोई खतरा न होता। जहां पांच-सात लड़के होते हैं, वहां एकाध नालायक भी निकलता है। पर देशसेवा के नाम पर गलत और नामाकूल लोगों के साथ हेलमेल रखना कोई माने नहीं रखता। इससे तो मुझपर आंच आएगी और सी० आई० ई० बनना तो दूर रहा, अच्छे लोगों में मेरा उठना-बैठना भी कहीं बन्द न हो जाए······

उषादेवी इस दृष्टिकोण से नहीं सोचती थीं। वे यह मानने के लिए तैयार नहीं थीं कि देशसेवा करने की बजाय शराबी और दुश्चरित्र होना अच्छा है। सच तो यह है कि उन्हें यह मालूम ही नहीं था कि देशसेवा का क्या अर्थ है। फिर भी जब वे राजेन्द्र के चेहरे की तरफ देखती थीं, तो उसमें एक दमक, एक लौ दिखाई पड़ती थी, जिससे अज्ञात के लिए सारा भय दूर हो जाता था। ऐसा मालूम होता था कि अपने अन्य लड़कों की तुलना में इस लड़के को उनके स्नेह की अधिक आवश्यकता है।

पर यह भावना केवल राजेन्द्र के सामने ही उत्पन्न होती थी। बाकी समय उन्हें भी कुछ भय मालूम होता था, जैसे कहीं कोई गलती हो रही हो, जैसे कहीं कोई ऐसी बात हो जिसका पूरा अर्थ समझ में न आ रहा हो। इस परिवार में रहते-रहते राजकिशोर बाबू का अनुगमन करते-करते

और उनकी तरह सोचते-सोचते उन्हें ऐसा मालूम होता था कि जीवन की यही पगडंडी है। इसीमें गति है और इसीमें कल्याण।

उषादेवी अपनी परम्परागत भावनाओं और राजेन्द्र के चेहरे पर बालक ईसा या बोधिसत्त्व की तरह दमकती ज्योति में सामंजस्य नहीं बैठा पाती थीं, पर इससे वे राजकिशोर बाबू की तरह परेशान भी नहीं थीं। वे न जाने किस प्रकार कदाचित् अपने भोले और सरल स्वभाव के कारण ही जाग्रत् अवस्था में न सही अवचेतन में उन दोनों का तालमेल बैठा लेती थीं। बोलीं—इसीलिए तो मैं कह रही हूं कि जिस किसी तरह इसकी शादी कर दो, फिर देखा जाएगा।

यह बात सुनकर राजकिशोर बाबू को क्रोध-सा आया। यह स्त्री कहती क्या है? अभी तो आंख के सामने लड़का शादी से इनकार कर गया और यह कहती है कि शादी कर दो। फुफकारते हुए बोले—कोई गुड्डा नहीं है, जो बात की बात में गुड़िया से शादी हो जाएगी। तुम्हारी आंख के सामने मेरा अपमान कर गया, साफ कह गया कि वह देशसेवा करना चाहता है, और तुम सारी बातों को देख-सुनकर ऐसे बोल रही हो, जैसे मैंने कहा और तुमने चाहा, बस शादी हो गई।

उषादेवी ने सचमुच इतनी गहराई से इसको नहीं सोचा था। बोलीं—शादी से सभी इनकार करते हैं, यह भी एक फैशन है। इसमें भला घबड़ाने की क्या बात है?

राजकिशोर बाबू बिल्कुल आपे से बाहर होकर बोले—शादी से वह इनकार कर रहा है, इसपर मुझे बहुत चिन्ता नहीं है। न होगा, राय-बहादुर से माफी मांग लूंगा और उन्हें कोई और अच्छा-सा दामाद ढूंढ़ दूंगा। यदि रुपये हों तो दुनिया में नौकरों और दामादों की कमी नहीं होती। पर सवाल तो यह है कि न मालूम यह देशसेवा के नाम पर क्या कर बैठे और बुढ़ौती में मेरे माथे पर कलंक का टीका लगे।

उषादेवी बोलीं—मैंने सुना है कि वह गांधी-आश्रम में जाकर चर्खा चलाना सीखता है। इसमें भला क्या बुराई है? गांवों में अब भी लोग चर्खा चलाते हैं। इससे सरकार को क्या हानि है? यह तो बच्चों का एक खेल है। थोड़े दिनों तक तबियत लगी रहेगी, फिर कोई और खेल सूझेगा।

तुम्हें यह याद नहीं है कि राजू का मन कभी बहुत दिनों तक एक खिलौने में नहीं लगा। ज्योंही कोई खिलौना खरीद दिया गया, त्योंही मानो उससे राजू का जी हट गया। दो-एक बार उससे खेलने के बाद यह फिर उस खिलौने की तरफ घूमकर भी नहीं देखता था।

राजकिशोर बाबू बोले—इसीसे तो मुझे भी डर है, कल को इसका जी चर्खे से हट जाएगा तो यह पिकेटिंग करेगा, जेल जाएगा, फिर बम-पार्टी में भरती होगा। बनेगा यह किसीका भी नहीं, पर इस बीच में मेरा सत्यानाश हो चुकेगा और इतने कष्ट से तैयार किया हुआ लहलहाता बाग उजड़ जाएगा।

फिर भी उषादेवी यही कहती रहीं कि शादी हो जाएगी, अभी लड़का है, लड़कबुद्धि दिखा रहा है इत्यादि।

पर शादी नहीं हुई और राजेन्द्र सचमुच चर्खे तक अपने को सीमित नहीं रख सका। १९२१ में जो सभाएं और जुलूस निकलते थे, राजेन्द्र उनमें हिस्सा लेने लगा। राजकिशोर बाबू के कानों में ये बातें पड़तीं और वे आगबगूला हो जाते। उन्हें ऐसा मालूम होता था जैसे सृष्टि का ही अन्त हो रहा है, और भले आदमियों की सारी मान्यताएं समाप्त हो रही हैं। प्रलय उन्हें करीब मालूम हो रहा था। और सन्तानों में तो इस प्रकार की अभिलाषा नहीं है, फिर यह कहां का कुलकलंक निकला।

उषादेवी बड़ी आफत में थीं। मस्तिष्क से वे एक बड़ी हद तक अपने पति के विचारों की अनुयायिनी थीं, पर वे इसमें भी कुछ बुराई नहीं देखती थीं कि लड़का सभाओं और जुलूसों में जाता है। हां, उन्हें एक बात पर आपत्ति थी, वह यह कि उनका लड़का बहुत ही मामूली लोगों के साथ, उन लोगों के साथ जिन्हें वे नौकर श्रेणी के समझती थीं, इतनी मेलजोल और राह-रस्म बढ़ा रहा है। यह बात सचमुच उन्हें अखरती थी और एक अज्ञात भय अंधेरी रात में दूर झलकते पहाड़ की तरह उनके मन में साकार होने लगता था।

पति और पुत्र के बीच में सन्तुलन कायम रखना बहुत ही कठिन हो रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे वे समानान्तर रेखाएं बनते जा रहे हैं। और उनमें किसी प्रकार का सामंजस्य नहीं बैठ सकता। हुआ भी ऐसा ही।

एक दिन राजकिशोर बाबू ने बाहर से लौटकर तैश में आकर कहा—आज भरी सभा में मेरा अपमान हुआ। मिस्टर स्मिथ ने सबके सामने ही कहा, "रायसाहब, तुम्हारा लड़का अनार्किस्ट है।" वे लोग जो मेरे सौभाग्य और मेरे धवलेकान्ति यश पर मुझसे कभी जलते थे, मुझपर हंस पड़े। पर मैं भी दबने वाला नहीं था। मैंने साहब से फौरन कहा, "साहब, जिस मुखबिर ने आपको यह बताया है कि मेरा लड़का अनार्किस्ट है, उसने आपको यह नहीं बताया कि मैंने उसे इसी कारण घर से निकाल दिया।" सब लोग मेरी बात सुनकर बगलें झांकने लगे। स्मिथ साहब ने उठकर मुझे अभिनन्दित करके मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा, "मैं जानता हूं कि आप सबसे पहले राजभक्त हैं, फिर और कुछ।"

यह ब्यौरा सुनकर उषादेवी को एक बार चक्कर आ गया, वे समझ गईं कि इस बातचीत का अन्ततोगत्वा क्या अर्थ है। वे संभलकर बोलीं—तुमने यह क्या गज़ब कर दिया ? उसे कम से कम एक मौका तो देते।

राजकिशोर बाबू भी कुछ ऐसा ही समझते थे, पर जो हो गया सो हो गया, वे अकड़ के साथ बोले—जिन लोगों ने मेरी मूंछें नीची करने के लिए यह बात कही थी, उन्हें फौरन तुर्की ब तुर्की जवाब देना था। इसके अलावा हमें यह भी देखना था कि कहीं स्मिथ साहब एक गलत धारण न बना लें।

—तो !

—तो क्या ? उस नालायक लड़के को यह घर छोड़ना पड़ेगा। यदि तुम इसपर राज़ी नहीं हो, तो फिर तुम लोग घर पर बने रहो, मैं निकल जाता हूं। मैं यह कभी सहन न करूंगा कि एक अनार्किस्ट के साथ मैं एक घर में रहूं और सब लोग मुझपर हंसें और स्मिथ साहब समझें कि मेरी राजभक्ति में कुछ कसर है। फिर तुम्हारे दूसरे बेटे भी हैं। उनका क्या होगा, यह भी कुछ सोचा है ?

उषादेवी ने एकाएक पूछा—अनार्किस्ट क्या ?

स्वयं रायसाहब को भी अनार्किस्ट शब्द का सही अर्थ मालूम नहीं था, फिर भी उन्होंने विश्वास के साथ कहा—अनार्किस्ट माने वह नामाकूल आदमी जो ब्रिटिश साम्राज्य के वरदान को न समझकर उसके विरुद्ध

चर्खा चलाए, खद्दर पहने, जुलूस और सभाओं में शामिल हो, समय से पहले स्वराज्य मांगे···

एकाएक उषादेवी को एक ऐसी बात सूझ गई, जो उन्हें ब्रह्मास्त्र मालूम हुई। वे जोश में आकर बोलीं—जब ये काम इतने बुरे हैं, तो एक महात्मा इनको ऐसा रास्ता क्यों दिखा रहे हैं ?

यह प्रश्न रायसाहब के मन में भी उठा था। उनके निकट राजभक्त होना सबसे बड़ा पुरुषार्थ था, पर महात्माओं का दर्जा उनकी आंखों में भी राजभक्तों से, यहां तक कि स्मिथ, पामर और जानसन ऐसे अंग्रेज़ों से भी ऊंचा था, मानो वे किसी और ही जगत् के लोग हों। बोले—यह बात समझ में नहीं आती कि ये कैसे महात्मा हैं। सुनते हैं वे रोज़ केवल ६ पैसे का खाना खाते हैं, उनके प्रताप की और भी बातें सुनी हैं, पर यदि वे महात्मा हैं, तो उन्हें राजनीति से क्या वास्ता ? वे आश्रम बनाकर रहें, और लोगों को ईश्वर-भक्ति का पाठ पढ़ाएं···

उषादेवी ने इन बातों को इतनी गहराई के साथ कभी सोचा नहीं था, पर इस समय तो उन्हें अपने बेटे के लिए (पता नहीं क्यों ? वही उन्हें इस समय बेटों में सबसे प्यारा मालूम हो रहा था), पति के लिए और अपने इस छोटे-से संसार के लिए लड़ना था, इसलिए उन्हें फिर एक बात सूझी और वे बोलीं—यह क्या बात कह रहे हो कि जो महात्मा हो उसे राजनीति से क्या मतलब ? हमारे यहां तो बराबर यह परिपाटी रही है कि अवतार लोग राजनीति में भाग लेते थे, और दुष्ट राजाओं को मार-कर उनके स्थान पर धर्मराज्य स्थापित करते थे। मैं तो यहां तक कहूंगी कि जब तक इस प्रकार के अवतार और महात्मा राजनीति में भाग नहीं लेते, तब तक जनता की क्या औकात है कि वह अधर्म को दूर कर धर्म-राज्य कायम करे। जो राम और कृष्ण न उत्पन्न होते, तो रावण, कंस, दुर्योधन और शिशुपाल नहीं मारे जाते।

उषादेवी ने जो कुछ कहा, उसपर उन्हें स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि ये वाक्य और ये विचार उनमें जाने कहां छिपे हुए थे। वे अपनी सफलता से जोश में आ गई थीं, पर उधर रायसाहब भी दबने वाले नहीं थे। उन्होंने बड़ी रुखाई के साथ यह प्रश्न पूछा जिससे उषादेवी के मन में

सन्नाटा छा गया। बोले—तो क्या अंग्रेज़ों के राज्य को तुम रावण और कंस के राज्य की श्रेणी में गिनती हो?

उषादेवी ऐसा कहने के लिए भी तैयार नहीं थीं, पर अब वे अपने तर्कों के बहाव में बहने लगी थीं। अब पीछे मुड़कर देखने का समय नहीं था। बोली—अंग्रेज़ों का राज्य चाहे जितना अच्छा हो पर है तो वह मलेच्छों का राज्य। इसके अलावा जलियानवाला में जो भयानक हत्या-कांड हुआ, उसका समर्थन कौन कर सकता है? निहत्थों पर गोलियां चलाकर उन्हें सैकड़ों की संख्या में मारना, यह तो सरासर नादिरशाही है!

रायसाहब इस समय कुछ ऐसे ढंग से बात कर रहे थे मानो सभा के बीच में बहस कर रहे हैं। जलियानवाला का नाम सुनते ही वे ऐसे तिल-मिला गए जैसे उन्हें एकसाथ सौ बिच्छुओं ने काट लिया हो। बोले—जलियानवाला के लिए कौन ज़िम्मेदार है? रौलट ऐक्ट सरकार को क्यों बनाना पड़ा? यदि सब लोग बुद्धिमानी से चलते, हर समय सरकार का साथ देते, तो रौलट ऐक्ट ही क्यों बनाना पड़ता और जलियानवाला ही क्यों होता? मैंने माना कि जलियानवाला में जिस तरह निहत्थे लोग घेर-कर मारे गए, वह ब्रिटिश परम्परा के विरुद्ध था, पर साथ ही इसमें उन लोगों की ज़िम्मेदारी किसी तरह घटाई नहीं जा सकती, जो लड़ाई के ज़माने में जर्मनों और तुर्कियों से मिलकर सशस्त्र षड्यन्त्र करते रहे। गोखले देश को अच्छे रास्ते पर ले जा रहे थे, पर तिलक और क्रान्ति-कारियों ने अंग्रेज़ों को ख्वाहमख्वाह इतना तैश दिला दिया कि वे आपे से बाहर हो गए। भले आदमी को भी हद से ज़्यादा छेड़ा जाए, तो वह भी सनक जाता है। सभी अंग्रेज़ अच्छे नहीं हैं, कुछ आपे से बाहर भी हो जाते हैं।

उषादेवी इतनी तफसील में बहस करने के लिए तैयार नहीं थीं। बोलीं—कुछ भी हो, राजेन्द्र को एक मौका देना चाहिए था। आखिर वह एक बच्चा ही है। इक्कीस साल की उम्र क्या होती है?

रायसाहब बोले—मैं अन्तिम बात कह चुका हूं। मैं एक अनार्किस्ट के साथ एक घर में रहने के लिए तैयार नहीं हूं।

उषादेवी ने कुछ नहीं कहा क्योंकि वे जानती थीं कि आगे कुछ कहना व्यर्थ है। हिमालय अपने स्थान से हटाया जा सकता है, चन्द्र-सूर्य भी अक्षिच्युत हो सकते हैं, पर राजकिशोर बाबू कभी अपना हठ नहीं छोड़ते थे। उषादेवी को यह बात देखते-देखते बीस साल से अधिक हो गए थे।

वे उठकर चली गईं···

२

उषादेवी समझ गईं कि उन्हें क्या करना है। काम बहुत ही मुश्किल था। इसके अलावा वह ऐसा था, जिससे उनकी नैतिक सहानुभूति नहीं थी। फिर भी करना उन्हींको था क्योंकि यदि रायसाहब इसे करते तो ऐसे करते, जिसके नतीजे में केवल अफसोस ही होता।

जब राजेन्द्र घूम-घामकर सन्ध्या समय घर आया, तो उषादेवी जाकर उसके पास बैठ गईं और नाश्ते के लिए स्वयं चीजें बढ़ा-बढ़ाकर उसे देने लगीं। राजेन्द्र ने इधर चाय पीनी छोड़ दी थी, इसलिए उसे नाश्ते में अब दूध ही दिया जाता था। उषादेवी दूध ठंडा करने के लिए एक गिलास से दूसरे गिलास में उड़ेलने लगीं। वे अक्सर आकर बैठती थीं, पर ऐसा शायद ही कभी करती हों। कम से कम राजेन्द्र को याद नहीं आता था। उसने मां के चेहरे की तरफ देखा, तो वह कुछ उतरा हुआ था। ऐसा मालूम होता था कि वे रो ही पड़ने वाली हैं या शायद उन्हें नींद आ रही हो...। पर ऐसे असमय नींद ही क्यों आने लगी ?

राजेन्द्र को दुःख तो हुआ, एक बार उसका गला भी रुंध-सा गया, पर इससे उसका मन पिघला नहीं, बल्कि और कड़ा पड़ गया क्योंकि उसने सोचा कि मां उसी शादी के सम्बन्ध में अन्तिम प्रयास करने आई है। पिता ने डांट-फटकार से काम लिया था, वह व्यर्थ गया था, अब माता दूसरा रूप धरकर आई है।

वह चुपचाप दूध पीता और मिठाइयां खाता रहा, पर मन में डरता रहा कि पता नहीं उधर से कब और किस रूप में आक्रमण शुरू हो। कमरे के अन्दर रखी हुई टाइमपीस टिक-टिक करती जा रही थी। एक-एक बार घड़ी की आवाज़ होती और उषादेवी को ऐसा अनुभव होता

जैसे उसके मातृत्व के शवाधार पर एक और कील ठुक गई।

पर कहना तो था ही। उससे बचत कहां थी? रायसाहब का कड़ा चेहरा याद आया।

किसी भी प्रकार रायसाहब मान नहीं सकते थे। वे बड़े कर्तव्यपरायण पिता और पति थे, पर इन सब बातों से ऊपर वे राजभक्त थे। उनकी धारणा के अनुसार अंग्रेज़ वर्तमान युग के देवता थे। एक अंग्रेज़ बुरा हो सकता था, दस अंग्रेज़ बुरे हो सकते थे, पर सारे अंग्रेज़ मिलकर कभी बुरे नहीं हो सकते थे। रायसाहब को समझाना असम्भव था।

इसीलिए यह होना ही था।

जब दोनों के बीच की चुप्पी बिल्कुल असहनीय हो गई, तब उषादेवी ने कहा—बेटा, मेरा जी अब घर में नहीं लगता। तू मुझे कहीं तीर्थयात्रा के लिए ले चल।

राजेन्द्र समझ नहीं पाया कि यह किस ढंग का आक्रमण है। उसकी सतर्कता कुछ ढीली पड़ गई। बोला—मां, तुम कैसी बात करती हो? काशी से बढ़कर कौन-सा तीर्थ है? यह नगरी तो भगवान शिव के त्रिशूल पर बसी है।

—बेटा, मेरा मन काशी से ऊब चुका है। अब मेरा मन घर में नहीं लगता।

राजेन्द्र ने देखा, मां सचमुच दुखी है। उसकी सारी सतर्कता जाती रही, बोला—मां, तुम चर्खा काता करो। इसमें खूब मन लगता है। सारे दुख भूल जाते हैं। चर्खे की आवाज़ में कुछ ऐसी मधुरता है कि मन रम जाता है। जाने कहां-कहां के विचार आते हैं। जिन बातों को कभी देखा नहीं, सुना नहीं, सोचा नहीं, यहां तक कि पढ़ा भी नहीं, वे बातें प्रत्यक्ष होकर सामने आ जाती हैं। मन इतने ऊंचे सुर में बंध जाता है कि इच्छा होती है बस चर्खा कातता चलूं, कातता चलूं और कभी न रुकूं।

उषादेवी की आंखों से आंसू की दो बूंदें लुढ़क पड़ीं। जल्दी से उन्हें पोंछकर हंसती हुई बोलीं—बेटा, तू सभाओं में कही जाने वाली बातें मुझसे भी करने लगा।

—नहीं मां। किसी सभा में किसीने यह बात कभी नहीं कही। वे

तो केवल यही कहते हैं कि भारत की गाढ़ी कमाई के इतने करोड़ रुपये लंकाशायर और मैनचेस्टर चले जाते हैं, ढाके की मसलिन कभी यूरोप के बाज़ारों में जाती थी, कारीगरों के अंगूठे काट-काटकर यहां के धन्धों को खतम किया गया, आदि-आदि।

—रायसाहब तो कहते हैं, अंगूठे काटने वाली बात कपोल-कल्पित है, ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

राजेन्द्र तैश में आकर बोला—पिता जी केवल अंग्रेज़ों की लिखी हुई चीज़ें ही पढ़ते हैं। पर नहीं, अंग्रेज़ों के लिखे हुए ब्यौरों से ही यह साबित है कि कारीगरों के अंगूठे काटे गए। पिता जी जब अंग्रेज़ों के विषय में कुछ सोचते हैं, तो वे शेक्सपियर, शेली, कीट्स, डिकेन्स, बर्नार्ड शा, गैल्सवर्दी, हार्डी आदि के आधार पर ही सोचते हैं। वे क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्ज़, डायर, ओडायर आदि के कारनामों पर नहीं सोचते···

राजेन्द्र इसी लहज़े में बहुत कुछ कह गया। उषादेवी को ऐसा मालूम हुआ जैसे रायसाहब जो कुछ कहते हैं, वह सत्य तो होता है, पर यह लड़का जो कुछ कह रहा है, वह बृहत्तर सत्य है।

इतने में उन्हें स्मरण हो आया कि वे आज क्या विशेष उद्देश्य लेकर आई हैं। वे राजेन्द्र का स्वर तो सुनती रहीं, पर वह क्या कह रहा है, इस सम्बन्ध में उनको कुछ ज्ञान नहीं रहा। ऐसा मालूम हुआ जैसे चारों तरफ फैले हुए अन्धकार के बीच एक चिनगारी की लौ जल रही है। दिशाएं धीरे-धीरे उज्ज्वल होती जा रही थीं। राजेन्द्र का इंगित स्पष्ट था, पर उन्हें उसका इंगित सुनने का अधिकार नहीं था। एक बार उन्होंने सोचा कि इस प्रकार जीने से तो अच्छा है कि मर जातीं।

राजेन्द्र जो कुछ कह रहा था, उसके बीच-बीच में कई बार मां-मां भी कहता जाता था। काश! वह इस शब्द का इस समय प्रयोग न करता। जब-जब वह इस शब्द का प्रयोग कर रहा था, तब-तब उषादेवी को ऐसा ज्ञात होता था कि कोई उनके रक्ताक्त हृदय से एक टुकड़ा मांस और नोचे ले रहा था, और सो भी चिमटे से। मां-मां क्या कह रहा है? हाय वह अबोध है। वह नहीं जानता कि उसकी मां को सोचने की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। वह स्त्री है, मां है। सच बात तो यह है कि वह कुछ

सोच ही नहीं पा रही थी।

राजेन्द्र जलियानवाला हत्याकाड का वणन कर रहा था। उसने बताया कि वह मां से छिपाकर उस स्थान को अपनी आंखों से देख आया था, जहां डायर ने वह हत्याकांड किया था। अभी उसका वर्णन चल ही रहा था कि उषादेवी एकाएक बिलख-बिलखकर रोने लगीं। एक मुहूर्त के अन्दर मां और बेटा दोनों आलिंगन-बद्ध हो गए। राजेन्द्र ने अर्द्धभीत होकर हंसते हुए कहा—मां, मैं जानता था।

उषादेवी उसे छाती से चिपटाकर करीब-करीब चीखकर बोलीं—बेटा, तू कुछ भी नहीं जानता। तू इस दैत्य कुल में कहां से प्रह्लाद बनकर आ गया? मैं कहती हूं जा, तू भाग जा, इस घर में तेरा स्थान नहीं है। तू महात्माओं और सन्तों की पांत में है, तू बुद्ध और महावीर की जमात का है, इस घर में तेरा स्थान नहीं है। तू आज ही इसी वक्त यहां से चला जा। मैं कहती हूं, तू जा···बेटा···जा···चला जा···

कहते-कहते अन्तिम चीख के साथ वे बेहोश-सी हो गईं, फिर संभलकर बोलीं—बेटा, मैं तुझसे छल कर रही थी। मुझे तीर्थयात्रा नहीं करनी है। मैं तो इसी नरक की कीड़ी बनकर जिऊंगी और यहीं मरूंगी। तू जा, आज ही इस घर को छोड़कर चला जा, इसीमें तेरा कल्याण है। मैं मां होकर तुझसे यह बात कह रही हूं। मैं मां नहीं राक्षसी हूं, राक्षसी!···

वे फिर सिसकने लगीं।

राजेन्द्र इस प्रकार के दृश्य या उद्‌गार के लिए तैयार नहीं था। वह एक बार तो घबड़ा गया, फिर बोला—मां, तुम शान्त हो जाओ, कहीं तुम्हारा वह दर्द ज़ोर न पकड़ जाए···

उषादेवी ने अपने बेटे को छाती से बहुत ज़ोर से चिपटा लिया मानो वह कोई बच्चा हो, फिर उसके बालों के अन्दर जल्दी-जल्दी उंगलियां फेरती हुई अजीब ढंग से हंसती हुई बोलीं—दर्द? वह दर्द तो कुछ भी नहीं था, अब जो दर्द उठेगा, वह किसी डाक्टर या वैद्य के वश का नहीं होगा। फिर भी मैं तुझे रोक नहीं रही हूं क्योंकि मैं जानती हूं कि तू ही सही मार्ग का पथिक है, हम नहीं। इसीलिए तो कह रही हूं, तू अभी यहां

से चला जा। बुद्ध छिपकर घर से निकल गए थे, उनकी मां मर चुकी थी, पर मैं तेरी मां होकर कहती हूं, तू मेरे सामने मेरे देखते-देखते चला जा···

फिर उषादेवी ने एकाएक राजेन्द्र को आलिंगनमुक्त कर दिया, और स्वयं खड़ी होकर दरवाज़ा दिखाकर, बिल्कुल दूसरे ही लहज़े में बोलीं—बेटा, जीवन इसीका नाम है। जाओ, इससे मुंह न मोड़ो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा···चले जाओ!···तुम मुड़कर न देखो··· जाओ···

राजेन्द्र को ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह अपने कब्ज़े में नहीं है, कोई बाह्य शक्ति उसे परिचालित कर रही है। वह कदाचित् इतनी जल्दी चलने के लिए तैयार नहीं था, पर किसीने उसे खड़ा होने का बल दिया, फिर उसीने उसके पैरों में गति दी। एक बार केवल एक बार वह लड़-खड़ाया, फिर ठिठककर खड़ा हो गया जैसे उसके पैरों ने कुछ सोचा, फिर वह आगे बढ़ा। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों उसके पैरों में अधिक शक्ति आती गई। मानो नया बना हुआ जहाज़ कारखाने से निकल-कर पानी में उतरा हो और फिर समुद्र की सलोनी हवा की गन्ध पाकर उसके मन में अपने पूर्वजन्मों की याद ताज़ी हो गई हो और वह द्रुतगति से समुद्र में आगे बढ़ गया हो।

दरवाज़े तक जाकर राजेन्द्र एक क्षण के लिए रुका। उसकी दृष्टि उषादेवी की ओर गई, और वह व्याकुल होकर उनकी ओर लौट पड़ा जैसे बहुत देर का बंधा हुआ बछड़ा रस्सी खुली पाकर मां के थनों की तरफ दौड़ता हो। राजेन्द्र ने मां के पैर छुए और फिर वह पहले से अधिक तेज़ी से दरवाज़े की तरफ लपका। दरवाज़े से बाहर होने तक उसमें बाहर की पुकार इतनी तगड़ी हो चुकी थी कि उसने यह नहीं देखा कि उसके मुड़ते ही उषादेवी कटे हुए ताड़ वृक्ष की तरह वहीं पर गिर पड़ीं।

३

जब उषादेवी को कई घंटों बाद होश आया, तो उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि उनके सिरहाने श्यामा बैठी हुई है। उसे देखकर एक बार के लिए फिर उनकी आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। ऐसा मालूम हुआ जैसे फिर वे बेहोश हो जाएंगी, पर श्यामा ने परिस्थिति संभाल ली। बोली—जब वे जा रहे थे, तो मैं वहां मौजूद थी। मैंने उनकी सारी बातें सुनीं, आपकी बातें भी सुनीं। मैं नहीं जानती थी कि आप इतनी अच्छी मां हैं।—कहकर उसने उषादेवी के गोरे-गोरे हाथों को उनसे भी गोरे अपने हाथों में ले लिया और उन्हें सहलाने लगी।

उषादेवी को सारी बातों पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सच तो यह है कि उन्हें इस समय विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जो कुछ उस समय हुआ, वह उन्होंने किया। सारी बातें स्वप्न-सी ज्ञात हो रही थीं। अजीब बात है कि उन्होंने लड़के को घर से निकाल कैसे दिया।

उषादेवी ने पूछा—क्या मैं बेहोश होकर गिर पड़ी थी?

श्यामा ने कहा—नहीं, आप गिरने ही वाली थीं कि रायसाहब ने आपको पकड़ लिया।

उषादेवी थोड़ी देर तक चुप रहीं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पर उनकी समझ में नहीं आया कि क्या कहें। पुत्र की विदाई वाला सारा दृश्य एक बार आंखों के सामने नाच गया। अब उसके साथ यह बात भी जुड़ गई कि रायसाहब भी कहीं आड़ से सारी बातें देख और सुन रहे थे। क्या वे ऐसा महज़ कौतूहल के कारण कर रहे थे या भीतर-भीतर उनके हृदय में भी स्नेह की फल्गु धारा उमड़ रही थी। क्या ऊपर से कठोर दिखाई पड़ने वाली पथरीली सतह के नीचे स्वच्छ शीतल जलधारा बह

रही थी ? अन्तिम बात की सम्भावना-मात्र सोचकर उषादेवी को रोमांच हो आया। काश······

बोलीं—तुम वहां कब और कैसे आईं ?

श्यामा पहले तो सकुचाई, फिर बोली—मैं आपसे मिलने आई थी। इतने में देखा कि आप किसीसे ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रही हैं। बस मैं खड़ी हो गई।—कुछ रुककर बोली—और कोई बात नहीं।

उषादेवी जैसे अपने से बात करती हुई बोलीं—उसी वक्त सभी आ गए। उधर वे भी आ गए, इधर तुम भी आ गईं। पता नहीं क्या होने वाला है। वह लड़का पता नहीं कहां गया। आज तक तो वह कभी एक दिन के लिए भी घर से अलग नहीं रहा। न जाने उसपर क्या बीतेगी।

श्यामा ने अजीब अनुप्राणित ढंग से कहा—उस समय तो आप ही उनकी हिम्मत बंधा रही थीं और इस समय आप ऐसी बातें कर रही हैं। जब उन्होंने इतना बड़ा व्रत लिया, तो वे उसे निभा भी ले जाएंगे···

उषादेवी की आंखें एकाएक चमक उठीं जैसे वे दूसरी ही स्त्री हो गई हों। बोलीं—तू ठीक कहती है बेटी। अब वह कोई बच्चा थोड़े ही है। उसने सोच-समझकर ही बीड़ा उठाया होगा, पर मेरा मन तो नहीं मानता ···मुझे अब भी वह नन्हा-मुन्ना ही लगता है···।

—आपने तो उन्हें उस समय दैत्यकुल का प्रह्लाद बताया था। जब उनका लक्ष्य अच्छा है, तो भगवान उनके साथ होंगे।

उषादेवी ने हाथ बढ़ाकर श्यामा को अपने पास खींच लिया, बोलीं —तू भगवान में विश्वास करती है ?

थोड़ी देर तक श्यामा स्तब्ध रह गई, कुछ कह नहीं सकी, फिर बोली—मैं नहीं जानती कि भगवान कैसे हैं और कौन हैं, पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि अच्छे काम का परिणाम अच्छा होना चाहिए।

आलिंगन को और भी निबिड़ बनाते हुए उषादेवी ने कहा—तो तू भी मानती है कि उसने जो कदम उठाया है, वह अच्छा है ?

श्यामा ने धीरे से अपने को छुड़ाते हुए कुछ झेंप के साथ कहा—मैंने भी एक छोटा-सा चर्खा मोल लिया है और जब-तब उसे कातती हूं······।

उषादेवी को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वे एक बच्ची की तरह खुश होती हुई बोलीं—अच्छा, तू भी चर्खा कातती है ? रायबहादुर इसपर कुछ नहीं कहते ?

—उन्हें मालूम हो, तब न कहें। घर में किसीको भी यह बात मालूम नहीं है। मैंने तो महात्मा जी का एक चित्र भी अपनी अलमारी में रखा है। जब-तब निकालकर उसे देखती हूं, तो बड़ी शान्ति मिलती है। सच मानिए मुझे तो ऐसा जंचता है कि वे कोई अवतार हैं।

उषादेवी ने महात्मा जी का चित्र नहीं देखा था, बोलीं—क्या वे जटाधारी हैं ? मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भी उस चित्र को देखूं। मैंने अपना जीवन व्यर्थ गंवा दिया, न व्रत-नेम कर पाई और न साधु-महात्माओं की सेवा की। बस गृहस्थी के फन्दे में ही फंसी रही।

श्यामा बोली—मैं आपको चित्र लाकर दिखलाऊंगी। न उनके जटा हैं न दाढ़ी। कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे वे महात्मा मालूम होते हों। वे हम सब लोगों की तरह हैं। पर उनकी आंखों में कोई ऐसी बात है जो आदमी को मोह लेती है। मैं तो चित्र देखते ही उनपर लट्टू हो गई...।

उषादेवी अचानक किसी दूसरे विचार में डूब गईं। भविष्य का एक धुंधला चित्र जैसे उनकी आंखों के सामने से नाच गया। एक बार आंखों के सामने गाय के बड़े-बड़े थन आ गए, फिर याद आई बछड़े की बात। बछड़े के आने के पहले ही गाय के थनों में दूध आ जाता है। पहले ही से सब इन्तज़ाम हो जाता है। बोलीं—तुम्हारे ये विचार राजेन्द्र को मालूम हैं ?

—नहीं, मैंने कभी किसीसे न तो चर्खे की बात कही और न चित्र की बात। मैंने पहले-पहल आपसे ही इसका उल्लेख किया।

उषादेवी के दिमाग में यह विचार आया कि यदि यह लड़की राजेन्द्र को ये बातें बता देती, तो कदाचित् अच्छा होता। फिर याद आया कि क्यों, इससे क्या लाभ है, अब तो इन दोनों का मिलन होना ही नहीं। प्रह्लाद और विवाह, पर याद आया कि आगे चलकर प्रह्लाद भी गृहस्थ बना था। विचार कहां से कहां उड़ने लगे। वे और कुछ नहीं बोल सकीं। थोड़ी देर में वे सो-सी गईं, और श्यामा वहां से चली गई।

४

राजेन्द्र को घर छोड़े हुए कई दिन हो गए थे। आरम्भ में उसके मन में कई बार निराशा झांक गई थी और एक-आध बार तो यह इच्छा भी हुई थी कि वह घर लौट जाए, पर अब ऐसी बातों से उसे छुट्टी मिल गई थी। बात यह है कि अब वह दिन-रात ऐसे लोगों में रहता था, जो इसी पथ के पथिक थे। वे एक-दूसरे को अनुप्रेरित करते थे और सर्वोपरि महात्मा गांधी उन्हें अनुप्रेरित करते थे।

महात्मा जी इस समय सारे देश के सामने राष्ट्रीय पुनरुत्थान के प्रतीक बनकर आए थे। वे जो भी बात कहते, उसकी गूंज पहुंचते-पहुंचते सुदूर गांवों में उठती थी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती थी, त्यों-त्यों वह प्रबल से प्रबलतर होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए एक चुनौती के रूप में होती जाती थी। राजेन्द्र ने अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद महात्मा जी को कभी भी एक राजनीतिक नेता नहीं समझा। लोकमान्य तिलक, जिनका उसने एक बार व्याख्यान भी सुना था, उसके निकट एक राजनीतिक नेता और क्रान्तिकारी थे, पर गांधी जी तो एक महात्मा थे। वे अवतारों और संतों की लीक में थे।

जब से राजेन्द्र ने इस तरफ कदम रखा था, तब से बहुत-से नये लोगों से उसका परिचय हुआ था। उसे यह देखकर आश्चर्य और साथ ही कदाचित् कुछ दुःख भी हुआ कि उसीकी तरह बहुत-से नौजवान देश का काम कर रहे हैं, पर ऐसा करने के लिए उन्हें घर त्यागकर संन्यासी नहीं बनना पड़ा। अवश्य उनमें से कोई भी इतना धनी तथा राजभक्त घराने से नहीं था।

राजेन्द्र एक छोटे-से कमरे में रहता था। यह कमरा उसे किराये

पर मिला था। खाने-पीने का यह हिसाब था कि जब जहां मिल गया, खा-पी लिया। उसे अपने विषय में बड़ा आश्चर्य होता था कि वह ऐसी ज़िन्दगी कैसे बिता पा रहा है।

पर उसका मन न तो खाने-पीने में रहता था और न अन्य किसी काम में। इन दिनों उसका चर्खा कातना भी छूट गया था। चर्खा तो आरम्भ-मात्र था, जैसे मार्कटाइम किया जाता है। जब यात्रा शुरू हो गई, तो फिर मार्कटाइम की गुंजाइश कहां रही ? अब तो वह घुटनों के बल चलना छोड़कर पांव-पांव चलने लगा था।

उसने अपना नाम स्वयंसेवकों में लिखा दिया था। साल-भर के अन्दर स्वराज्य जो लेना था। स्वयं महात्मा जी ने यह कहा था कि तिलक स्वराज्य फंड में एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया और लोग कांग्रेस के सदस्य भी बन गए, तो ३१ दिसम्बर १९२१ की आधी रात तक स्वराज्य हो जाएगा।

सबको यह विश्वास था कि ऐसा ही होगा। राजेन्द्र तो अभी छात्र था, बड़े-बड़े पुराने अध्यापक, नेता, वकील, बैरिस्टर और सम्पादक तक यह विश्वास करने लगे थे कि ऐसा ही होगा। फिर राजेन्द्र की क्या बिसात ? जिन एक-आध लोगों ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई, वे देशद्रोही और अंग्रेज़ों के पिट्ठू समझे गए। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि सैकड़ों वर्षों से ग़ुलाम रहने के कारण भारत के निवासी जिस अमूल्य सम्पत्ति से वंचित हो चुके थे, वह था विश्वास। किसीको विश्वास ही नहीं रह गया था कि हम भी कभी स्वतन्त्र हो सकते हैं। हां, कुछ थोड़े से क्रान्तिकारी इस विश्व-व्यापी काले अन्धकार में जुगनुओं की तरह जलकर और बुझकर तथा जल-जलकर बुझकर और बुझ-बुझकर जलकर अलख जगा रहे थे। पर उनका विश्वास और उच्छ्वास जनता की चीज़ नहीं बन पाती थी। वे स्वर्ग के देवता या ऐसे ही कुछ समझे जाते थे, जिनसे जनता का सिवा इसके कोई वास्ता नहीं था कि वे दूर से उन्हें देखें और त्याग की सराहना करें।

राजेन्द्र तिलक स्वराज्य कोष में चन्दा जमा करने के लिए अन्य नौजवानों के साथ सड़कों पर बक्स लेकर घूमता था। पहले दिन जब

बक्स उछालकर चन्दा मांगने के लिए एक मेले में खड़ा हुआ तो उसे कोई लज्जा नहीं मालूम हुई, यद्यपि उसने सोचा था, कदाचित् उसे कुछ लज्जा मालूम हो। थोड़ी देर में तो उसे पूरा जोश आ गया और वह चिल्ला-चिल्लाकर लोगों से चवन्नी, दुअन्नी, पैसे एकत्र करने लगा।

—माताओ, बहनो, भाइयो, तिलक स्वराज्य फंड में चन्दा दीजिए, देश को स्वतन्त्र कीजिए। जल्दी ही स्वराज्य होने वाला है···।

इस तरह वह कई बार छोटे-मोटे व्याख्यान देने लगा। मेले के लोग उसके इर्द-गिर्द खड़े होकर उसकी बात श्रद्धा के साथ सुनते और जिससे जो कुछ बन पड़ता देते। चन्दा मांगने में राजेन्द्र बहुत सफल रहा। उसका बक्स रोज़ भरा हुआ आने लगा। उसकी कही हुई बातों से शायद उसके गोरे-गोरे कोमल चेहरे का अधिक असर पड़ता था, पर नहीं, उसकी तरह के चेहरे वाले और भी कई थे लेकिन उनका उतना असर नहीं पड़ता था। राजेन्द्र की आंखों और आवाज़ में कोई ऐसी बात होती थी, जो लोगों की आत्मा में बैठ जाती थी।

चन्दा मांगते-मांगते राजेन्द्र को अपनी सुध-बुध नहीं रहती थी। कई बार उसके साथी उसे बुलाकर ले जाते, तब वह कांग्रेस के दफ्तर में बक्स खाली करवाने जाता था। जब वह चन्दा मांगने खड़ा होता था, तो कई बार कई महिलाएं उसके सामने खड़ी हो जातीं और मातृस्नेह से भरकर उसे बार-बार देखतीं और उसे महात्मा जी का चेला बताकर आपस में प्रशंसात्मक लहजे में बातचीत करतीं। फिर वे पैसे, यानी जैसी जिसकी हैसियत होती, दे जातीं और मन ही मन महात्मा जी को प्रणाम करतीं, जिसके ऐसे चेले हैं, वह स्वयं न जाने कैसा पहुंचा हुआ और तेजोद्दीप्त होगा।

एक दिन एक अधेड़ महिला राजेन्द्र को कुछ देर तक प्रशंसात्मक दृष्टि से देखकर खड़ी हो गई, फिर पूछ बैठी—बेटा, तुम किसके लड़के हो?

राजेन्द्र एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। यह महिला पूछ क्या रही है। फिर वह बोला—माताओ, बहनो, भाइयो, तिलक स्वराज्य फंड में चन्दा दीजिए, भारतमाता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त

कीजिए···।

उस महिला ने एक रुपया निकालकर ठन्न से बक्स के छेद के अन्दर डाल दिया फिर बोली—धन्य हैं तुम्हारे मां-बाप, मेरे तो कोई बेटा नहीं है, नहीं तो मैं भी उसे इसी काम में लगाती।—कहकर उसने एक लम्बी सांस ली और फिर एक बार आंख भरकर राजेन्द्र को देखा।

राजेन्द्र बोला—आप मुझे ही अपना बेटा समझ लें। बस मेरी मां होने के लिए आपको एक बात करनी पड़ेगी, वह है खद्दर पहनना। आपको अपने विलायती कपड़ों की होली करनी पड़ेगी।

इसके उत्तर में उस महिला ने अपनी सहेली से कुछ कहा और वह आगे बढ़ गई। उसने क्या कहा वह राजेन्द्र को सुनाई नहीं पड़ा। उसने फिर से बन्द बक्स के पैसों को उछालते हुए, अपना नारा बुलन्द किया—माताओ, बहनो, भाइयो, तिलक स्वराज्य फंड में चन्दा दीजिए, कांग्रेस का मेम्बर बनिए, खद्दर पहनिए, ३१ दिसम्बर की आधी रात तक स्वराज्य होना निश्चित है।

कुछ दिनों से राजेन्द्र इस समय इसी जगह खड़ा होता था।

वह महिला अगले दिन आई, तो राजेन्द्र ने देखा कि वह सिर से पैर तक खद्दर पहने हुए है। उसने एक बार राजेन्द्र को प्रेम-भरी दृष्टि से देखा, कोष के बक्स में एक रुपया रखा, फिर उसे एक बार पहले से अधिक व्यग्र और लालायित दृष्टि से देखकर रोज़ के रास्ते चली गई।

जब कई दिनों तक ऐसा हुआ, तो राजेन्द्र के मन में एक बार यह सन्देह हुआ कि कहीं वह कोई अनुचित बात तो नहीं कर रहा है। उसने जाकर सारी बात अपने नेता, असहयोग करने वाले एक अध्यापक से कही। नेता ने कहा—इसमें क्या बुराई है। अगर वह तुमसे स्नेह रखती है, और इसी नाते देशसेवा करती है, तो इसमें हर्ज क्या है? देश का भी भला होता है और उस महिला का भी। किसी भी मिस से अच्छा काम करना अच्छा है।

राजेन्द्र ने सन्देह की पुनरावृत्ति करते हुए कहा—कहीं वह मुझसे कुछ आशा तो नहीं करती?

—करे, इससे तुम्हारा क्या?

उस समय तो बात वहीं तक खत्म हो गई, पर अगले दिन इस सम्बन्ध में कुछ नए गुल खिले । ज्योंही राजेन्द्र तिलक स्वराज्य कोष का बक्स लेकर उस निर्दिष्ट स्थान पर जाकर खड़ा हुआ, त्योंही आसपास के भिखमंगे तथा अन्य ऐसे ही लोग, जो पहले से इस कार्य के लिए तैयार मालूम होते थे, उसपर टूट-से पड़े और उसका बक्स पकड़कर खींचने लगे। राजेन्द्र की समझ में नहीं आया कि ये लोग ऐसा किसलिए कर रहे हैं।

उसने कठिनाई के साथ बक्स उन लोगों के चंगुल से छुड़ाया, बोला—तुम लोग यह क्या कर रहे हो ?

एक लम्बा, दुबला-सा आदमी जो इन लोगों का सरदार मालूम होता था, बोला—तुमको भीख मांगनी है, तो कहीं और जाकर मांगो। यह जगह हम लोगों की है। पुश्त दर पुश्त से हम यहीं पर भीख मांगते आए हैं।.........

राजेन्द्र पहले तो आश्चर्य में आ गया, फिर बोला—भाई, मैं भीख थोड़े ही मांगता हूं। मैं तो कांग्रेस के लिए चन्दा मांगता हूं।—कहकर उसे कुछ ऐसा अनुभव हुआ जैसे जो बात वह कह रहा है, वह यथेष्ट प्रभावोत्पादक नहीं है, इसलिए बोला—स्वराज्य होगा तो तुममें से किसीको भीख मांगने की ज़रूरत नहीं रहेगी और इसमें देर ही क्या है? ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य हो जाएगा ।......

वह लम्बा-दुबला आदमी अजीब व्यंग के साथ हंसा। उसके हंसने पर पता चला कि वह काना भी है। वह हंसा, पर साथ ही कुछ पीछे भी हट गया। उसकी देखा-देखी दूसरे लोग भी पीछे हट गए। बोला—स्वराज्य जब होगा तब होगा हमें अभी से तो न मारो। जब से तुम्हारे फंड का चन्दा इकट्ठा होने लगा, तब से हम लोगों को कम रकम मिलती है। यह जो माई जी रोज़ तुम्हें एक रुपया देती है पहले वह हममें यह रुपया बांटती थी। तुम्हीं सोच लो कि फिर हम झगड़ा क्यों न करें ?

इस तर्क के आगे राजेन्द्र को कुछ नहीं सूझा। उसके सामने जैसे एक नया अज्ञात जगत् खुल गया, जिससे वह कतई परिचित नहीं था, जिससे डर लगता था। एक बार उसकी मज्जा तक इस नाते सत्य का भय,

भय तो नहीं एक अप्रिय अनुभूति व्याप्त हो गई। वह बोला—पर भाई, यह तो सोचो कि महात्मा जी ने हुक्म दिया है कि रुपये इकट्ठे करो, मैं उसीके अनुसार रुपये इकट्ठे कर रहा हूं। ये रुपये देश के लिए हैं।

उसने देखा कि उसके कथन का कोई विशेष असर नहीं हुआ। हां, वे दो-तीन इंच पीछे और हट गए। इसलिए उसने तिनके का सहारा-सा लेते हुए कहा—तुम लोग कुछ काम क्यों नहीं करते? भीख मांगना कोई अच्छी बात थोड़े ही है।···

यह सुनकर घेरने वालों के चेहरों पर जो खोया-खोया भाव आ गया था, वह एक मुहूर्त में लुप्त हो गया और वे लोग कुछ अकड़ते हुए फिर आगे बढ़े। सब लोग एक साथ बोल पड़े—हमें काम देता कौन है? पुलिस वाले भी तो हमें जेल नहीं ले जाते कि कुछ दिन छत के नीचे रहकर बखत से रोटी खाएं···

राजेन्द्र इस परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए असमर्थ था। फिर भी उसे अपने बचाव के लिए कुछ कहना ही था। बोला—भाइयो, जब महात्मा जी ने कहा है, तो वह होकर रहेगा। थोड़े दिन की तकलीफ और सह लो। स्वराज्य होगा तो किसीको भीख मांगने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी।

वह लम्बा-दुबला आदमी आगे बढ़ा, बोला—महात्मा जी की बात सुनकर हम लोग इतने दिनों से सब्र करते आए हैं, नहीं तो पहले ही दिन तुम्हारी मरम्मत कर देते। बाप-दादों की जगह है, ऐसे थोड़े ही जाने दे सकते हैं?

भीड़ में से एक नौजवान भिखमंगा आगे बढ़कर बोला—तुम भीख क्यों मांगते हो? अगर तुम्हारा गांधी ऐसा ही जादूगर है, तो वह रुपये क्यों नहीं पैदा कर लेता? खुद भी ले और हमें भी बांटे। वह हम गरीबों का पेट क्यों काटता है?

वह लम्बा-दुबला आदमी इस नौजवान को पीछे हटाते हुए बोला—और हम लोगों ने तुम्हारा सब पता ले लिया है, तुम रायसाहब राजकिशोर के लड़के हो। तुम अपनी जायदाद का एक हिस्सा फंड में दे दो, तो वही जाने कितने लाख का हो जाए···

राजेन्द्र को जैसे कुछ राहत मिली, बोला—तुम लोग जब इतना जानते हो, तो यह भी जानते होगे कि मैं घर से निकाला जा चुका हूं, फिर मेरी जायदाद कैसी ?

उस नौजवान भिखमंगे ने अपने को फिर आगे लाते हुए कहा—अरे यह सब चालाकी हम खूब समझते हैं। जो तुममें इतना ही जोश है तो अपनी जायदाद ले लो । जायदाद रायसाहब की कमाई हुई थोड़े ही है, पुश्तैनी है, इतना कानून तो मैं भी जानता हूं।

राजेन्द्र विपत्ति में फंस गया । यदि इस समय पचास पुलिस वाले उसे घेर लेते, तो वह उनसे न घबड़ाता, पर इन लोगों से वह क्या तर्क करे ? वह परेशान होकर बगलें झांकने लगा । ऐसे समय में केवल एक ही बात याद आई, बोला—भाइयो, महात्मा गांधी का आदेश है कि तिलक स्वराज्य फंड में चन्दा इकट्ठा करो । मैं तो यहां तक कहूंगा कि आप लोग भी पैसा-धेला जो बन पड़े इसमें डालें···

वह नौजवान आगे बढ़कर एकाएक राजेन्द्र के हाथ से बक्स छीनकर उसके अन्दर के पैसों को झनझनाते हुए बोला—इसमें जो पैसे हैं, वे हमारे नहीं तो किसके हैं ? तुम ये पैसे न ले लेते, तो ये किसे मिलते ?

राजेन्द्र ने घबड़ाकर बक्स की तरफ हाथ बढ़ाते हुए कहा—भाइयो, यह कोई अच्छी बात है कि तुम लोग मुझसे बक्स छीन रहे हो ? जो तुम्हारी ऐसी ही मर्जी है कि मैं यहां न आया करूं, तो मैं यहां नहीं आऊंगा। तुम लोग मेरा बक्स दे दो । मैं अपने नेता से जवाब क्या दूंगा ? एं ?

इसपर उस लम्बे-दुबले आदमी ने आगे बढ़कर उस नौजवान से बक्स ले लिया और राजेन्द्र को बक्स देते हुए कहा—जाओ बाबू, जाओ, हम लोग खानदानी भिखमंगे हैं, भूखों मर जाएंगे पर कभी कोई जुर्म नहीं करेंगे । यह लड़का न जाने कैसी तबियत का है, एक बार जेल भी काट आया, पर यह अपनी हरकतों से बाज नहीं आता।······

राजेन्द्र सोच ही रहा था कि इस प्रकार से इन लोगों के डराने-धमकाने से जगह छोड़कर भाग खड़ा होना कहां तक उचित होगा ? कहीं वह हिंसा के सामने घुटने तो नहीं टेक रहा है ? पर अगले ही क्षण यह विचार आया कि इन लोगों का यह क्षोभ हिंसा नहीं है, यह है भूख की तड़प ।

फिर भी वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पाया क्योंकि आज उसके सामने कई ऐसे प्रश्न आए थे, जो बिल्कुल नये थे, साथ ही वह उनसे बच नहीं सकता था। ठीक तो है। ये भिखमंगे, जैसा कि उनके चेहरों से स्पष्ट है, पेट-भर खाना नहीं पाते, इनके पास कपड़े नहीं हैं, रहने को घर नहीं हैं। क्या सचमुच तिलक स्वराज्य फंड में जो चन्दा आ रहा है, उसमें से एक अंश भी इनका पेट काटकर आ रहा है ? तब तो······

राजेन्द्र इन्हीं बातों में उलझा हुआ था कि वह रोज़ वाली महिला अपनी सहेली के साथ आती हुई दिखाई पड़ी। उसे देखते ही सब भिखमंगे भीड़ छोड़कर अपनी-अपनी जगह पर हो गए। तमाशाई बिखर गए। उस लम्बे-दुबले आदमी ने राजेन्द्र से इशारा किया, जिसका मतलब यह था कि चलते-फिरते नज़र आओ।

राजेन्द्र ऐसा ही करने जा रहा था कि उस महिला ने यह भांप लिया कि दाल में कुछ काला है, इसलिए वह जल्दी-जल्दी चलकर राजेन्द्र के पास आ गई। बोली—बेटा, तुम कुछ घबड़ाए-से मालूम होते हो, क्या बात है ?

भिखमंगों का सरगना राजेन्द्र को दूर से देख रहा था। जब उसने देखा कि महिला ने स्वयं ही राजेन्द्र से इस प्रकार का प्रश्न किया, तो वह भीतर ही भीतर कुछ कुनमुनाने लगा। साथ ही उसे कौतूहल भी हुआ कि देखा जाए यह क्या कहता है।

राजेन्द्र ने कहा—कोई खास बात तो नहीं है मां जी।

उस महिला ने चारों तरफ के लोगों को देखा, उसे फिर संदेह हुआ कि कोई न कोई बात ज़रूर है। बोली—तुम्हें ये लोग घेरे क्यों थे ?

अब राजेन्द्र के लिए बात टलना सम्भव नहीं था। बोला—ये लोग कह रहे थे कि मुझे यहां चन्दा मांगने का कोई अधिकार नहीं है।

—क्यों ?—वह तेवर चढ़ाकर बोली।

—इसलिए कि मेरे चन्दा मांगने से इनकी भीख घट जाती है।

—यह अजीब बात है।

—अजीब बात नहीं है, वे आपका ही उदाहरण देते हैं, पहले आप इनको पैसे देती थीं, अब कुछ नहीं देतीं।······

उस महिला ने कुछ सोचा, फिर बोली—अच्छा तो ये लोग तुम्हें

अपनों में ही समझते हैं ?

फिर कुछ सोचकर बोली—चन्दा मांगो, चाहे वह देश ही के लिए हो, है तो बुरा ही काम। चलो, तुम मेरे साथ चलो।···

राजेन्द्र इस महिला के प्रति एक अजीब अनिर्वचनीय स्नेह का अनुभव करने लगा था, पर इस बात से उसे बहुत ठेस लगी। बोला—मां जी, कांग्रेस को रुपयों की ज़रूरत है, वह रुपया चन्दे से नहीं आएगा, तो और कहां से आएगा ?

महिला बोली—क्यों ? महात्मा जी झोली पसारकर बड़े लोगों के यहां एक बार दौरा कर दें, तो एक करोड़ नहीं दस करोड़ रुपये बात की बात में मिल सकते हैं। इसके लिए तुम्हारी तरह दुधमुंहे लड़कों से रास्ते में खड़े करके भीख मंगवाने की कोई ज़रूरत नहीं थी।

राजेन्द्र ऐसा तर्क पहले भी सुना चुका था। बोला—मां जी, आप जो कह रही हैं, वह सही है। उस ढंग से महात्मा जी को दस करोड़ रुपये तो मिल सकते हैं, पर हमें तो दस करोड़ हृदय और दिमाग का समर्थन भी साथ में लेना है। यह आन्दोलन जनता का आन्दोलन है, इसमें हमें जनता के ही पैसे चाहिए।···

पर यह बात उस महिला के पल्ले नहीं पड़ी। बोली—जनता के सहयोग का तो यह हाल है कि ये लोग तुम्हें घेरकर शायद मारने पर उतारू थे। क्या ये नहीं जानते कि तुम किसलिए चन्दा मांग रहे हो ?

—जानते हैं, पर इनके स्वार्थ के साथ तिलक स्वराज्य फंड का कुछ संघर्ष पड़ता है, ये पहले ही भूखे रह जाते थे, अब और भूखे रह जाते होंगे, इसलिए इनका क्रोध बिल्कुल अनुचित तो नहीं ज्ञात होता।

महिला बोली—वही बात कह रही हूं कि तुम्हारे ऐसे कुछ मुट्ठी-भर नौजवानों और आदर्शवादी लोगों के अतिरिक्त बाकी सभी अपने स्वार्थ का लेशमात्र बलिदान करने को तैयार नहीं हैं। घाते में तुम लोग भिखमंगे भी बने जाते हो।

राजेन्द्र खिलखिलाकर हंस पड़ा, बोला—आप भी ऐसा कहती हैं ?

—हां, मुझे यह बुरा लगता है कि तुम लोग जो सही अर्थों में त्यागी हो, तुम्हारी मुसीबतों और अपमानों पर ही भारत के भविष्य की नींव पड़ रही

है। और एक बात है, यह जो भीख मांगने की बुरी आदत तुम कांग्रेसियों में पड़ रही है, यह कभी छूटेगी थोड़े ही। मैंने अनाथालय से एक लड़के को लाकर पाला, मैंने उसे लाख समझाया कि तुम घर के मालिक हो, पर अनाथालय वालों ने उसमें जो भीख मांगने की आदत डाली थी, वह किसी तरह सुधरी नहीं। अन्त में जब उसने एक घर में जाकर कुछ मांगा तो मैंने उसे अलग कर दिया। अब भी उसका सारा खर्च मैं उठाती हूं, पर उसे मैंने गोद नहीं लिया।—कहकर वह महिला कुछ दुखी हो गई।

राजेन्द्र महिला की भावनाओं को पूरा-पूरा तो नहीं, हां कुछ हद तक ज़रूर समझ गया। बोला—हो सकता है आप जो कह रही हैं, वह एक हद तक सच हो, पर दस-बीस आदमियों में भीख मांगने की वृत्ति बन जाएगी, इस डर से एक संस्था को बिगड़ने तो नहीं दिया जा सकता। यदि कांग्रेस केवल धनियों के पैसे लेगी, तो वह धनियों की संस्था बन जाएगी, नहीं तो महात्मा जी के लिए एक करोड़ रुपये तो कोई बात नहीं है। मैं तो एक छात्र ही हूं, पर महात्मा जी ने एक-एक पैसा लेकर एक करोड़ रुपये बनाने का जो कार्यक्रम बनाया है, उसे मैं भी समझ सकता हूं। जब तक कांग्रेस इस तरह एक-एक पैसा लेकर आगे बढ़ेगी, तब तक उसके अन्दर जनता का दिल धड़केगा, उसकी रगों में जनता के रक्त का दौरा होगा, पर जिस दिन वह लखपतियों और करोड़पतियों के चन्दे पर फलेगी-फूलेगी, उस दिन से वह जनता के लिए बेकार हो जाएगी।...

राजेन्द्र अजीब अनुप्रेरित ढंग से ये बातें कह गया। शायद उसने जो बातें कहीं, उनका पूरा अर्थ वह स्वयं नहीं जानता था। पर महिला पर इनका कोई असर नहीं हुआ क्योंकि वह इन बारीकियों को नहीं समझती थी। बस उसने अपने तजर्बे से भीख मांगने की बुराई देखी थी, उसीको उसने व्यक्त कर दिया था। वह तजर्बा उसके लिए पत्थर की लकीर थी। वह बीच ही में बात काटकर राजेन्द्र से बोली—चलो आज मेरे साथ चलो। तुम दिन-भर में कांग्रेस के लिए जितना कमाते हो, मैं उतने रुपये तुम्हारे बक्स में डाल दिया करूंगी।

राजेन्द्र इन लोगों से तो बचना चाहता ही था, बोला—पर इनकी भीख तो दे दीजिए।...

यह कहना था कि सारे भिखमंगे, गोश्त के टुकड़े को देखकर जैसे कौए झपटते हैं, वैसे ही उस महिला की ओर दौड़ पड़े और कातर चेहरे बनाकर अपनी कटोरी, टीन का डिब्बा आदि जिसके पास जो कुछ था उन्हें सामने बढ़ाने लगे।

एक क्षण के लिए वह महिला जैसे कुछ सोचने लगी, फिर उसने ठन्न से चांदी का एक रुपया उस लम्बे-दुबले आदमी की छेद वाली अलूमीनियम की कटोरी में डाल दिया और राजेन्द्र का हाथ पकड़कर वहां से निकल पड़ी। फिर उसने या राजेन्द्र ने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया कि उनके पीछे उस रुपये के बंटवारे के सम्बन्ध में उन लोगों में उसी प्रकार से कांव-कांव खांव-खांव होने लगा, जैसे एक हड्डी को लेकर कुत्तों में होता है।

५

यथा समय मि० स्मिथ को यह खबर मालूम हुई कि रायसाहब राज-क़िशोर ने अपने लड़के राजेन्द्र को घर से निकाल दिया और वह इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है। उसके मन पर इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। बात यह है कि स्मिथ उन लोगों में था, जो यह ईमानदारी के साथ विश्वास करता था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद संसार की एक प्रगतिशील शक्ति है और भगवान ने सभ्यता के प्रसार के लिए उसकी सृष्टि की है। इसलिए उसके निमित्त त्याग देने अथवा लेने में उसे कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। उसका बड़ा लड़का १९१४-१८ के महायुद्ध में फ्लैंडर्स के रणक्षेत्र में मारा गया था। इस घटना को वह ज़हर का घूंट पीकर नीलकंठ की तरह धारण किए हुए था। वह इसपर गौरव तो क्या करता, पर इसे बहुत स्वाभाविक समझता था। जीने का अर्थ ही उसके लिए था पवित्र साम्राज्य के लिए जीना।

स्मिथ ने दस-पन्द्रह दिन तक राजकिशोर बाबू सम्बन्धी इस खबर पर कोई ध्यान नहीं दिया, पर अन्दर ही अन्दर यह सूचना उसके अन्तः-करण को धीमी आंच में सुलगाती रही। वह त्याग की किसी भी तरह अवज्ञा नहीं कर सकता था। इसके अलावा वह जानता था कि अपने ही जिगर के टुकड़े को अपने से अलग कर देना कितनी बड़ी बात है। उसे जल्दी ही नये साल के लिए उपाधियों की सिफारिश भी भेज देनी थी।

उसने पुलिस कप्तान जानसन को बुला भेजा। फिर दोनों चाय पर बात करते हुए जिले की सारी परिस्थिति की आलोचना करने लगे। जानसन बोला—मुझे तो परिस्थिति बहुत बिगड़ती मालूम देती है। क्या करूं, क्या न करूं, यह समझ में नहीं आता। जो बात पहले मुट्ठी-भर

क्रान्तिकारियों में दिखाई पड़ती थी, वह अब सारी जनता में फैल गई है। यदि केवल राजनीति की बात होती, तो हम इसका आसानी से मुकाबला कर सकते थे। कांग्रेस के विरुद्ध हम अमन सभा बना रहे हैं, उससे काफी काम बन सकता था, पर इनकी राजनीति में धर्म का जो पुट है और जिसके कारण सब लोग इनके बहकावे में आते जाते हैं, उसका कैसे मुकाबला किया जाए, यह समझ में नहीं आता। जब तक हम गांधी के द्वारा प्रचारित इस धार्मिक उपादान का विरोध नहीं कर पाते, तब तक हमारी अमन सभाएं आंधी के सामने सूखे पत्तों की तरह उड़ जायेंगी···।

स्मिथ कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला—अभी प्राच्यदेश मध्य युग में पड़े हुए हैं। इसलिए यहां धर्म या धर्म का ढोंग एक प्रबल शक्ति है। गांधी ने जन-मन की इस कमजोरी को अच्छी तरह समझ लिया है, इसलिए वह उसका अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग कर रहा है। फिर भी हमें हाथ पर हाथ धरकर बैठ नहीं जाना चाहिए। धर्म का मुकाबला धर्म से करना पड़ेगा।

जानसन इस बात को समझ नहीं सका, बोला—कैसे ? हम यह कैसे कर सकते हैं ?

स्मिथ जैसे कुछ हंसा, बोला—हमारे साथ अनेक पंडित, महामहोपाध्याय, मौलवी और मुल्ला हैं, और साथ ही इनके धर्मशास्त्रों में राजभक्ति-सम्वन्धी शास्त्रवाक्य भी हैं। हमें उन उद्धरणों का प्रचार करना पड़ेगा, जनता को यह बतलाना पड़ेगा कि राजद्रोह धर्म-विरुद्ध है। साथ ही उन्हें व्यावहारिक सतह पर यह भी बतलाना पड़ेगा कि किस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतवासियों को अज्ञान-अन्धकार से उबारा है, जीवन के लिए तरह-तरह की सुविधाएं पैदा की हैं······।

जानसन बोला—यह सब तो हो ही रहा है, पर इसका कोई अधिक प्रभाव पड़ रहा है, ऐसा तो मालूम नहीं होता। गांधी का व्यक्तित्व ऐसा है, जिसके जोड़ का आदमी हमारी तरफ कोई नहीं है। उसके मुकाबले में हमारे आदमी बिलकुल खिलौने जंचते हैं।

स्मिथ बोला—दुर्भाग्य से आप जो कह रहे हैं, वह सही है। पर यह भी याद रखिए कि यदि हम पराजित हो गए, तो गांधी का भी काम नहीं

बनने का। जिस धर्म के कारण वह अजेय हो रहा है, वही उसको तथा उसके देश को ले बैठेगा। धर्म से ताल्लुक ईश्वर का है, जहां उसका प्रयोग ऐहिक मामलों में हुआ, वहीं वह अपने बच्चों को खा जायगा। कहा जाता है क्रान्ति अपने बच्चों को खाती है, पर असल में ऐसा इसलिए होता है कि क्रान्ति कुछ लोगों के निकट दो दूनी चार न रहकर धर्म-सी बन जाती है।

जानसन के स्थूल दिमाग पर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ा। वह तो एक सैनिक था और यही समझता था कि आज की समस्याओं को सुलझा लिया, तो बहुत है। दूर भविष्य की बात सोचना न तो उसके वश का था और न उसे वह अपना कार्य समझता था। बोला—परिस्थिति हाथ से बाहर होती जा रही है। अब यही है कि बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां की जाएं।

स्मिथ बोला—हां, भारत सरकार भी इसी नतीजे पर पहुंच चुकी है। कपड़े की दुकानों पर जो पिकेटिंग हो रहा है, उसका असर लंकाशायर और मैनचेस्टर की मिलों पर पड़ने लगा है। हमें कुछ करना ही पड़ेगा। दमन के साथ ही साथ हमें अपनी राजभक्त प्रजा को भी प्रोत्साहित करना पड़ेगा…

स्मिथ एकाएक रुक गया और फिर उसी प्रकार एकाएक बात शुरू करते हुए बोला—यदि रायसाहब राजकिशोर को सी० आई० ई० बना दिया जाए, तो कैसा रहे?

—उसके लड़के राजेन्द्र के कारण हमें बड़ी परेशानी हो रही है। उसकी देखादेखी बड़े घरों के कई लड़के असहयोग में कूद पड़े हैं। सुनते हैं कि ये लोग कोई स्कूल चलाने वाले हैं। कई महिलाएं भी इनके साथ हो गई हैं।

—पर राजेन्द्र तो घर से निकाला हुआ है।

—इसीसे वह और खतरनाक हो गया है। वह एक छोटा-मोटा महात्मा समझा जाने लगा है।

स्मिथ बोला—ठीक है, पर इसी कारण उसके पिता का उत्साह बढ़ाना जरूरी है।

—पर इससे दूसरे राजभक्त रईस बहुत चिढ़ेंगे। वे महायुद्ध के युग में हमारे अधिक काम आए······

स्मिथ बोला—इसी बात पर मैं भी विचार कर रहा हूं। साथ ही मैं यह भी समझता हूं कि ऐसे लोगों की परवाह करने से साम्राज्य नहीं चल सकता। जिस पद्धति में त्याग की कोई कद्र नहीं है, वह पद्धति कभी टिक नहीं सकती। राजकिशोर बाबू ने अपने लड़के को घर से निकालकर त्याग का परिचय दिया है। हम चाहते हैं कि हमारी सभी राजभक्त प्रजा इसका अनुकरण करे। अपने से पहले परिवार, परिवार से पहले देश और देश से पहले साम्राज्य, हम इसी मूलमंत्र को सारे साम्राज्य में जनप्रिय बनाना चाहते हैं।

जानसन को ऐसी बड़ी-बड़ी बातें बहुत रुचती नहीं थीं। बात यह है कि वह लड़ाई में रहकर देख चुका था कि वहां आदर्शवाद कितना चलता है। फिर भी एक पुराने अधिकारी के नाते (वह नौकरी छोड़कर लड़ाई में गया था) वह यह जानता था कि इस प्रकार की बातों का भी एक स्थान है।

वह जमुहाई लेकर बोला—मैंने आपका ध्यान पूर्ण परिस्थिति की ओर आकर्षित कर दिया। कई लोग तो यह समझते हैं कि यदि किसी खानदान में कोई राजद्रोही निकल गया, तो हमें चाहिए कि उस पूरे खानदान को सज़ा दें ताकि दूसरों के लिए नसीहत हो जाए। राजकिशोर बाबू ने लड़के को जरूर घर से निकाल दिया, पर मैं जानता हूं कि उनकी पत्नी के विचार बड़े उग्र होते जा रहे हैं। वह खुल्लमखुल्ला गांधी का चित्र घर में रखने लगी है।

स्मिथ के माथे पर बल आ गए। बोला—वह शायद राजनीति की बात नहीं समझती, उसने गांधी का एक चित्र एक धर्मगुरु के चित्र के नाते रखा होगा। क्या राजकिशोर बाबू को इस चित्र का पता है?

जानसन बोला—नहीं, कम से कम मेरे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसके अलावा आजकल ऐसे-ऐसे रूप में गांधी के चित्र निकल रहे हैं कि समझ पाना मुश्किल है। मैंने आपको दिखलाया था कि एक चित्र में गांधी हिन्दुओं के देवता कृष्ण की तरह वंशी बजा रहे हैं और अदालतों

से सी० आर० दास, मोतीलाल आदि वकील गोपियों के रूप में चले आ रहे हैं, स्कूलों से लड़के गायों के रूप में दौड़े चले आ रहे हैं, दूसरे चित्र में चर्खे को चक्रसुदर्शन के रूप में दिखाया गया है, और लंकाशायर तथा मैनचेस्टर की मिलें उसकी मार से नष्ट हो रही हैं।

स्मिथ ने बीच ही में बोलते हुए कहा—राजकिशोर की स्त्री के पास इनमें से कौन-सा चित्र है ?

जानसन बोला—मैं इतने ब्योरे में नहीं गया। मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं मालूम हुई।

स्मिथ ने कहा—कोई बात नहीं, पर एक बात का पक्का पता मिलना चाहिए कि राजकिशोर को इस चित्र की बात मालूम है या नहीं। इसके बग़ैर हम उपाधियां बांटने के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ निश्चय नहीं कर सकते।

उस समय राजकिशोर बाबू के विषय में इतनी ही बातचीत हुई। बाद को जानसन ने पूरी रिपोर्ट दी, जिसके आधार पर स्मिथ ने यह निश्चय किया कि रायसाहब राजकिशोर को सी० आई० ई० कर दिया जाए। अन्य कई व्यक्तियों को भी उपयुक्त उपाधियां देने का निश्चय किया गया। साथ ही यह निश्चय किया गया कि दमनचक्र तेज़ किया जाए।

६

श्यामा के पिता रायबहादुर बंशीधर ने जब यह सुना कि रायसाहब राजकिशोर ने अपने लड़के राजेन्द्र को राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने के अपराध में घर से निकाल दिया, तो वे पहले तो भौंचक्के रह गए। जब धीरे-धीरे इस खबर की सारी विशेषताओं और परिणाम पर चिन्ता करने लगे, तो उन्होंने एक निश्चय यह किया कि श्यामा का विवाह जल्दी कर देना चाहिए। वे उसी समय से दौड़धूप में लग गए।

दो-एक दिन में श्यामा को इसका पता लगा तो उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। मां से कहने पर कुछ लाभ की आशा नहीं थी। पिता से कहना तो असम्भव ही था। यद्यपि वह इस समय कोई बच्ची नहीं थी, फिर भी वह उनसे बहुत डरती थी। फिर रायबहादुर की प्रकृति भी ऐसी थी कि वे अपने आगे किसीकी चलने नहीं देते थे। एक मिनट के लिए भी वे अपनी बात का विरोध सुन नहीं सकते थे।

तो वह क्या करे ?

जब रायबहादुर ने यह तय कर लिया कि उसकी शादी जल्दी कर देनी है, तो वह होकर ही रहेगी। श्यामा उधेड़बुन में पड़ गई। वह जितना ही सोचती गई, परिस्थिति उसे उतनी ही विकट मालूम हुई।

एक दिन उसने सुना कि उसके भावी ससुर साहब आए हैं और उसे किसी बहाने से उनके सामने जाना है। मालूम हुआ कि यह साहब भी कोई बहादुर ही हैं।

पर श्यामा उसी समय बीमारी का बहाना बनाकर पड़ गई और जब तक वह साहब चले नहीं गए, वह बिस्तरे से उठी ही नहीं।

इसपर उसके पिता को सन्देह हो गया कि दाल में कुछ काला अवश्य

है । पर वे यह सोच ही नहीं सकते थे कि लड़की ने किसी उद्देश्य को सामने रखकर ऐसा किया है । उन्होंने यही सोचा कि उसने लड़कबुद्धि के कारण ऐसा किया है ।

फिर भी अतिथि के चले जाने के बाद वे बहुत बिगड़े, पर श्यामा तबियत खराब होने के बहाने पर डटी रही । यद्यपि जो डाक्टर बुलाया गया था, वह अन्त तक यही कहता रहा कि कोई खास बात नहीं है, सम्भव है कि पेट में कोई मामूली खराबी हो ।

श्यामा अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए और दो दिनों तक बिस्तरे से नहीं उठी । डाक्टर, कम्पाउण्डर, नौकर-चाकर दौड़ते रहे पर श्यामा तभी अच्छी हुई, जब उसने तय कर लिया कि उसे अब अच्छा हो जाना चाहिए ।

रायबहादुर बंशीधर ने अपने भावी समधी को यह लिख दिया कि एक महीने के बाद आप फिर आने का कष्ट करें । अब बेटी की तबियत ठीक है । आपको उस दिन कष्ट हुआ······इत्यादि ।

एक महीने का समय भी कोई अधिक नहीं था, यद्यपि वह कुछ तो था ही । श्यामा ने सोच लिया कि अब की बार बीमार बनने से काम नहीं बनेगा । उसने एक बार सोचा कि उषादेवी से सारी बात कह दे । उसे आशा थी कि वे अवश्य कुछ न कुछ करेंगी । पर उनसे भी कुछ कहना आसान नहीं था । क्या कहा जाए ? कैसे कहा जाए ?

इसी प्रकार उधेड़बुन में बीस रोज़ बीत गए । तब श्यामा के कान खड़े हुए । उसने गांधीजी का चित्र उठाकर सामने रख लिया और उसे घंटों देखती रही । वह आशा करती थी कि इस प्रकार उसे कुछ न कुछ बात सूझ पड़ेगी । अन्त तक वह उठी और घर से निकलकर बाहर चल पड़ी ।

लगभग एक मील चलकर वह एक बड़े-से मकान के सामने पहुंची और वहां उसने दरवान से पूछा—राजेन्द्र बाबू किधर रहते हैं ?

पहले तो दरबान समझा नहीं कि किसका ज़िक्र हो रहा है पर जब श्यामा ने पूरा वर्णन किया, तो वह समझ गया । वह घर का पुराना नौकर था, उसने अपने मन में यह विचार किया कि अब तक तो राजेन्द्र से कोई

मिलने नहीं आया था। फिर यह उससे कहां से मिलने आ टपकी? वह मालकिन के स्वभाव से परिचित था, इसलिए श्यामा को वहीं ठीक से बैठाकर उनके पास खबर देने चला गया।

मालकिन उर्फ रूपवती के सचमुच ही कान खड़े हो गए। वह डर रही थी कि कोई राजेन्द्र को लेने आया है। सम्भव है यह उसकी बहन हो, रूपवती एक क्षण तक सोचती रही, फिर बोली—जाओ, इस लड़की को राजेन्द्र के पास ले जाओ।

कहकर वह स्वयं तैयार होने लगी और जब श्यामा राजेन्द्र के कमरे में दाखिल हुई, तो वह ऐसे मौके से खड़ी हुई कि भीतर की सारी बातें सुनाई पड़ें।

राजेन्द्र दिन-भर कांग्रेस का प्रचार करने के बाद अभी आकर कुछ खाने-पीने के बाद चर्खे पर बैठा ही था कि उसे सामने श्यामा दिखाई पड़ी। आश्चर्य के मारे उसका तागा टूट गया और वह जल्दी में उठ खड़ा हुआ। यों तो श्यामा को वह बचपन से देखता आ रहा था, पर घर छोड़ने के बाद ही उसे मालूम हुआ था कि उसके माता-पिता श्यामा के साथ ही उसकी शादी तय कर रहे थे।

श्यामा ने कल्पना की थी कि राजेन्द्र ऐसे रहता होगा, वैसे रहता होगा, पर जो वास्तविकता सामने आई वह कल्पना से बिलकुल ही भिन्न निकली। राजेन्द्र बेढंगा खद्दर का कुरता और जांघिया पहने हुए था। पास ही लकड़ी की खड़ाऊं रखी थीं। यद्यपि कमरा बहुत ही ठाट का था, पर सामने जो बिस्तरा लगा था, उसमें केवल दो कम्बल और दो चादरें मालूम होती थीं। न मालूम क्यों यह दृश्य देखकर श्यामा की आंखें भर-सी आईं।

राजेन्द्र समझ गया कि उसकी परिस्थिति में कुछ अस्वाभाविकता है, इसलिए वह कुछ लज्जित होकर बोला—'जेल जाने की प्रैक्टिस कर रहा हूं।—कहकर कमरे की शानदार दीवारों की तरफ देखते हुए बोला—जेल की कोठरी तो ऐसी नहीं होती है, पर क्या करूं मां जी का स्नेह है, एक दिन भिखमंगों के बीच से घसीट लाईं, तब से यहीं रहना पड़ता है। अध्यापक मातादीन जी से कहा, तो बोले, "कोई हर्ज नहीं, एक

स्वयंसेवक का बोझ हमपर से उतरा। पर एक बात है, वहां ऐसे ही रहना कि जेल जाना है, यह याद रहे।"

अब तक किसीने किसीको बैठने के लिए नहीं कहा था। एकाएक राजेन्द्र को यह बात सूझी, बोला—तुम खड़ी क्यों हो ?

श्यामा ने इधर-उधर देखा, फिर बोली—कहां बैठूं ?—कहकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

सचमुच बैठने की कोई जगह नहीं थी। जेलखाने की प्रैक्टिस की धुन में राजेन्द्र ने घर का सारा असबाब यहां तक कि फर्श पर बिछे हुए कालीन को भी हटवा दिया था। उसके लिए विशेष रूप से यह रस्सी वाली खटिया आई थी। हां, एक कुशासन भी आया था, जिसपर बैठकर वह चर्खा काता करता था और उसीपर इस समय वह खड़ा था।

राजेन्द्र लज्जित हुआ, पर बोला—मुझे यह आशा नहीं थी कि सिवा पुलिस के दारोगा के मुझसे कोई और मिलने आएगा।—कहकर वह कुशासन पर से अपने अनजान में हट गया, हटने को तो हट गया पर कुशासन की तरफ देखकर उसे यह हिम्मत नहीं हुई थी कि वह श्यामा उसपर बैठने के लिए कहे।

श्यामा शायद उसकी मानसिक परिस्थिति ताड़ गई। वह फौरन कुशासन पर बैठ गई और तागा जोड़कर पूनी उठाते हुए चर्खा कातने लगी। दो-तीन बार तागा तकुए में लपेटकर बोली—तुम्हारा सूत बहुत मोटा है, केवल जनेऊ में या बटकर ढोर-डांगर बांधने के काम आ सकता

राजेन्द्र माफी-सी मांगते हुए बोला—सचमुच मेरा सूत बहुत खराब है। पता नहीं यह विद्या मुझे कभी आएगी या नहीं। फिर भी कातता इसलिए हूं कि इससे मन को बड़ी शान्ति मिलती है। ऐसा मालूम होता है जैसे हज़ारों वर्षों की प्राचीन एक सभ्यता मुझसे चर्खे की आवाज़ के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से बातें कर रही है। आंखों के सामने जंगलों से उठता हुआ यज्ञ का लहराता हुआ धुआं, मोटी-ताज़ी गायों के झुंड, वेद-मंत्रों का गुंजार, वल्कल पहने हुए सन्तोषी ऋषि और उनके परिवार आ जाते हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे भारत की सामयिक पराजय तथा

पराधीनता उसे कलंकित और क्षुब्ध नहीं कर सकती। भारत के भावी उत्थान की बात आंखों के सामने एक प्रत्यक्ष सत्य के रूप में आ जाती है। न तो दुःख दुःख मालूम होता है और न कष्ट कष्ट। तुम विश्वास करो श्यामा, जब मैं इस कुशासन पर बैठकर चर्खा कातता हूं, तब मुझे मालूम होता है जैसे यह सूत कुछ भी नहीं है, उपलक्ष्य-मात्र है, मैं भारत और विश्व का भाग्य कात रहा हूं।

सुनते-सुनते श्यामा चर्खा कातना भूल गई। उसे मालूम हुआ जैसे वह सचमुच ही इस समय किसी तपोवन में बैठी हुई ऋषिकन्या है। हवा में उसे हवन-सामग्री की गंध तैरती-सी प्रतीत हुई। ऐसा मालूम हुआ जैसे अभी कोई तपस्विनी गाय खुले हुए दरवाज़े के अन्दर से गला निकालकर प्रेम-भरी आंखों से झांकेगी और फिर अपनी मालकिन को सुखी और स्वस्थ देखकर अध-मुंदी आंखों से जुगाली करने लगेगी। श्यामा की आंखों से आंसू की एक बूंद टप से उसकी साड़ी पर गिर पड़ी।

इससे वह सतर्क हो गई, बोली—राजेन्द्र, तुम तो बड़े भावुक और कवि हो गए हो।

मानो दोष स्वीकार करते हुए राजेन्द्र ने कहा—हां, विरुद्ध परि-स्थितियों से लड़ने के लिए अर्थशास्त्र के आंकड़े सहायक नहीं होते। इसके लिए कविता कह लो, भावुकता कह लो बहुत उपयोगी है। एक अध्यापक के लिए आंकड़े कदाचित् यथेष्ट हैं, पर युगनिर्माता आंकड़ों में नहीं सोचता और इस समय तो अदना से अदना स्वयंसेवक भी युगनिर्माता हो गया है। यह महात्मा जी का प्रताप है। पर यह तो बताओ, तुम किसलिए आईं?

श्यामा सहसा इसका उत्तर नहीं दे सकी। वह जैसे दूसरे ही गीयर में पहुंच गई और पूनी उठाकर चर्खा कातने लगी। चर्खे की भन-भन और बीच-बीच में तकुवे में सूत लपेटने की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। राजेन्द्र जहां का तहां खड़ा रहा। फिर भी दोनों हृदय आपस में कुछ वार्तालाप करते रहे…

श्यामा कुछ देर तक उसी प्रकार से चर्खा कातती रही। राजेन्द्र ने जब देखा कि कोई उत्तर नहीं मिला, तो वह उस कमरे में इधर से उधर कठघरे में बंद शेर की तरह टहलने लगा। पता नहीं कितनी देर तक यह

क्रम चलता रहा। बाहर खड़ी-खड़ी रूपवती उकता रही थी। साथ ही आगे क्या होता है, इस सम्बन्ध में उसकी उत्सुकता प्रबल हो रही थी। उसकी अवस्था इस समय उपन्यास के उस पाठक की तरह हो रही थी, जो आगे क्या होने वाला है, जानने के लिए जल्दी-जल्दी पन्ने उलटकर कहानी का अन्त करना चाहता है।

थोड़ी देर बाद श्यामा ने चर्खा कातना जारी रखते हुए कहा—पिता जी, मेरी शादी के लिए जल्दी कर रहे हैं। कह रहे हैं, इसी महीने हाथ पीले कर देने हैं।—कहकर वह अजीब तरीके से मुस्कराई।

राजेन्द्र ठिठककर खड़ा हो गया, पर कुछ बोला नहीं। सच तो यह है कि उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था। वह तो इस समय परीक्षार्थी अर्जुन की तरह हो रहा था, जिसे केवल निशाने के लिए रखी हुई चिड़िया की आंख ही दिखाई दे रही थी। बाकी सारी बातें उसके लिए रह ही नहीं गई थीं। उसे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे वह आगे बढ़ना चाहता हो, पर किसीका निषेध एक क्षीण प्रतिध्वनि की तरह उसे पीछे की ओर बुलाने का संकेत दे रहा हो।

चर्खा चलता रहा और सूत तकुवे पर एकत्र होता रहा। कई पूनियां समाप्त हो गईं। तब एकाएक श्यामा उठी और किसी तरफ न देखकर बोली—तो मैं जा रही हूं।

राजेन्द्र की नींद जैसे खुल गई। अर्जुन के सामने की चिड़िया की आंख तिलमिला गई। राजेन्द्र जैसे आकाश से धरती पर आ गया। वह करुण आर्तता के साथ बोला—पर मैं तो कल जेल जा रहा हूं। सब कुछ ठीक हो गया है। कल सेठ छंगामल की विलायती कपड़े की दुकान पर पिकेटिंग करूंगा और वहीं गिरफ्तार हो जाऊंगा।

श्यामा फिर से चर्खे पर बैठ गई। जिस भावावेग के कारण वह एकाएक उठ खड़ी हुई थी, उसका अब लेशमात्र भी बाकी नहीं था। वह पूर्ण रूप से शान्त हो चुकी थी। बोली—ठीक है, तुम कुछ चिन्ता मत करो···

श्यामा ने क्या कहा और राजेन्द्र ने क्या समझा, यह वे ही जानें, पर दोनों पूर्णतः सन्तुष्ट हो गए। राजेन्द्र बोला—कल इतने वक्त मैं जेल की

चहारदीवारी के अन्दर होऊंगा। कल मैं सही अर्थों में स्वयंसेवक बनूंगा। अभी तक जो कुछ किया, वह तो मार्कटाइम था, अब असली लड़ाई देखूंगा···

श्यामा के मन में एक बार आया कि अपने सम्बन्ध में कुछ कहे, कुछ पूछे, पर जैसे आराम से सोते हुए व्यक्ति को नींद से जगाने में ममता लगती है, उसी प्रकार से श्यामा ने राजेन्द्र के स्वप्नों को छेड़ना नहीं चाहा। केवल इतना बोली—उषादेवी को बहुत कष्ट होगा।

राजेन्द्र बोला—जानता हूं, मां को कष्ट होगा, तुम्हें कष्ट होगा, शायद पिता जी भी एक बार दुखी हों, पर क्या करूं? यह एक युद्ध है। इसमें बिना त्याग और तपस्या के जीत नहीं हो सकती। जब कोई जाति उठती है, तो वह त्याग की नींव पर ही उठती है। हमारा पतन इसीलिए हुआ था कि हमारे पूर्वज मृत्यु से डरकर जीवन से चिपके रहे। उनके निकट जीवन का अर्थ किसी तरह सांस लेते रहना ही हो गया, परिणाम यह हुआ कि हमें मृत्यु से भी घटिया चीज़ पराधीनता मिली। महात्मा जी ने फिर से देश के सामने इसी त्याग का सन्देश रखा है। मैं चाहता हूं कि मैं उनकी सेना का एक अदना-सा सिपाही प्रमाणित होऊं। मैं चाहता हूं, माता जी, पिता जी, तुम सब लोग मेरे लिए शुभकामना करो, जिससे मैं इस भीषण परीक्षा में सफल हो सकूं···

श्यामा की आंखों से उसके अनजान में एक मोती ढुलक पड़ा। श्यामा ने जल्दी से उसे छिपाते हुए कहा—माता जी हर समय तुम्हारी बात कहती हैं। अफसोस है कि अब उन्हें तसल्ली देने के लिए कोई न होगा।

—क्यों तुम तो होगी···

श्यामा ने इसका उत्तर नहीं दिया, केवल बोली—क्या स्त्रियों को देशसेवा का अधिकार नहीं है या वे हृदयहीन हैं?

राजेन्द्र बोला—महात्मा जी तो स्त्रियों से बहुत अधिक आशा करते हैं···

उसकी बात बीच ही में काटकर श्यामा झमककर बोली—वे तो सब कुछ कहते हैं, पर तुम क्या कहते हो?

—इस सम्बन्ध में मेरे कहने का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि अभी तो मुझे ही यह प्रमाणित करना है कि मैं कुछ हूं। मैं जब राजनीतिक कैदियों की जेल-सम्बन्धी आपबीती कहानियां पढ़ता हूं, तो मेरे मन में यह सन्देह होता है कि पता नहीं मैं आसन्न अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण भी हो सकूंगा या नहीं···

राजेन्द्र शायद और कुछ कहता, पर इसी समय दरवाज़ा खोलकर रूपवती भी भीतर आई और उसके साथ तरह-तरह की मिठाइयां और नमकीन लेकर नौकर भीतर आ गए। साथ ही साथ एक मेज़ और कई कुर्सियां भी भीतर लाई गईं। राजेन्द्र यह सब देखकर बोला—मां, मैंने तो तुम्हें इन सब बातों के लिए मना कर रखा है।

रूपवती किसी प्रकार की परवाह किए बिना सब सामान ढंग से लगाती हुई बोली—तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हो रहा है, पर अतिथि की आवभगत तो होगी ही।

श्यामा बीच ही में बोल पड़ी—मैं तो ज़रूर खाऊंगी, साधू जी खाएं या न खाएं······

इसलिए सब लोग खाने-पीने बैठ गए, दोनों को एकसाथ खाते-पीते देखकर रूपवती को बहुत सुख हुआ। ऐसा मालूम हुआ जैसे राजेन्द्र उसका लड़का और श्यामा उसकी पतोहू हो। काश! ऐसा सचमुच होता।

७

अगले दिन राजेन्द्र को दो बजे तक फुटकर कामों से फुर्सत नहीं हुई। उस दिन सेठ छंगामल की दुकान पर सात-आठ गिरफ्तारियां हो चुकी थीं। सारे शहर में विशेषकर कांग्रेसियों में उसकी चर्चा थी।

राजेन्द्र स्वयं पिकेटिंग के लिए बेचैन हो रहा था। पर काम ऐसे थे जिन्हें वह छोड़ नहीं सकता था। बहुत चेष्टा करने पर तीन बजे तक उसे छुट्टी हुई। उसके नेता ने उसे भेजते समय कहा—कुछ खा-पीकर जाओ।

सचमुच आंतें कुड़कुड़ा रही थीं, पर उसने कहा—अब तो जेल की ही रोटियां खाऊंगा।—कहकर वह चल पड़ा।

रास्ते में उसे किसीने बताया कि दुकान खाली देखकर यानी दुकान पर पिकेटिंग न होता देखकर दो महिलाएं अपने से पिकेटिंग करने लगीं और वे गिरफ्तार कर ली गईं। पता नहीं क्यों राजेन्द्र को यह खबर अच्छी नहीं लगी। साथ ही उसे बहुत जोश भी आया। जब महिलाएं इस प्रकार से काम करने लगीं, तो फिर ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य होने में कोई सन्देह नहीं रहा। वह जल्दी-जल्दी सेठ छंगामल की दुकान की ओर बढ़ा।

जब वह दुकान के पास पहुंचा, तो उसने देखा कि उषादेवी उसके लिए खड़ी हैं। पता नहीं कब से खड़ी हैं। उन्हें कैसे पता लगा कि आज वह गिरफ्तार होने जा रहा है? वे इतने दिनों से कभी नहीं मिलीं, फिर आज ही क्यों मिलने आई हैं। क्या वे उसे रोकने आई हैं? तब तो बहुत बुरी बात है।

उसके चेहरे पर कठोरता झलकने लगी और वह बचावात्मक ढंग से

मां की ओर बढ़ा और उनके चरण छुए। पता नहीं कहां उषादेवी ने फूलों की एक सुन्दर माला छिपा रखी थी, उन्होंने उसे अपने बेटे के गले में डाल दिया और बोलीं—तुम कोई चिन्ता मत करो। अपने मार्ग पर चलते जाओ, अवश्य कल्याण होगा।

राजेन्द्र जल्दी में देख नहीं पाया था, पर अब दिखाई पड़ा कि उषादेवी ने ऊपर से नीचे तक खद्दर पहन रखा था। मां इसमें कितनी अच्छी खिल रही थीं। उस समय राजेन्द्र को एक क्षण के लिए ऐसा मालूम हुआ जैसे उषादेवी उसकी माता तो हैं ही, पर साथ ही वे भारतमाता भी हैं। हां, उसकी कल्पना की भारतमाता ऐसी ही है, हंसती हुई, पर उस हंसी के अन्दर से कुछ रोती हुई। वह लपककर मां से एक छोटे बच्चे की तरह लिपट गया। राजेन्द्र के साथ जो लोग गिरफ्तार होने के लिए आए थे, वे इस दृश्य को देख रहे थे और उनके मन में भी वही भावनाएं लहरा रही थीं, जो राजेन्द्र के मन में थीं। उन्हें देखकर राजेन्द्र को याद आया कि उसे जाना है। वह जल्दी से मां के चरण छूकर चल पड़ा। उसके साथ के नौजवानों ने भी उषादेवी के चरण छुए। उषादेवी ने सबको आशीर्वाद दिया। और मालाएं नहीं थीं।

राजेन्द्र दो ही तीन कदम आगे गया था, कि उषादेवी ने उसे पुकारते हुए कहा—एक बात तो तुमने सुनी ही होगी।

राजेन्द्र ठिठककर खड़ा हो गया, लौटा नहीं। उसके मन में सन्देह हुआ कि कहीं मां का आत्मबल कम तो नहीं पड़ रहा है, वह कुछ अविश्वास के साथ बोला—कौन-सी बात !

मां शायद बेटे की भावना समझ गई, बोली—पगले, मैं तुझे रोक नहीं रही हूं। तुझे एक ऐसी बात बता रही हूं, जिससे तुझे बल मिलेगा।—कहकर वे पुत्र तथा उसके साथियों की ओर बढ़ीं। बोलीं—श्यामा और उसके साथ रूपवती, जिसे तूने अपनी मां बनाया था, थोड़ी देर पहले यहीं गिरफ्तार हो गईं। श्यामा की बड़ी इच्छा थी कि गिरफ्तारी के समय तू उसे देखे।

अब राजेन्द्र की समझ में आया कि कल रात को उससे अलग हो जाने के बाद श्यामा रूपवती के साथ क्यों देर तक बातें करती रही। वह

स्वयं गई और एक को साथ भी ले गई। न मालूम क्यों उसका सीना इस बात को सुनकर दुगुना हो गया। वह बोला—मां, जब तूने इतना किया, तो यह भी ख्याल रखना कि कहीं श्यामा कोई कमज़ोरी न दिखाए।

उषादेवी मृदु झिड़की देते हुए बोलीं—आश्चर्य है कि तूने उसे पहचाना नहीं। मैंने तो उसमें कभी कोई कमजोरी नहीं पाई। उसे साहस के काम करने के लिए प्रैक्टिस करने की ज़रूरत नहीं है, जैसा तू कर रहा था। उसके लिए तो ये बातें ऐसी ही स्वभावसिद्ध हैं, जैसे मछली के लिए तैरना।···

और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं हुई। राजेन्द्र का छोटा-सा जत्था आगे बढ़ गया। उषादेवी आंखें पोंछती हुई कुछ दूर पर खड़ी फिटन गाड़ी पर जाकर बैठ गईं। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे आई तो अकेली थीं, पर इस समय गाड़ी पर रायसाहब भी बैठे हुए थे। वे डरीं कि कहीं वे कुछ बुरा-भला तो नहीं कहेंगे, पर उन्होंने अपनी पत्नी से एक शब्द भी नहीं कहा।

८

राजेन्द्र तथा उसके साथी उस दिन गिरफ्तार करके जेल भेज दिए गए। राजेन्द्र ने जेल के सम्बन्ध में अपने मन में जो चित्र बना रखा था, जेल उससे बिलकुल भिन्न निकली। न तो यह कोई अंधेरी गुफा थी और न इसमें जो जमादार तथा पहरेदार थे, वे यमदूत की तरह थे। फिर भी सारी आबोहवा में कोई ऐसी बात थी, जो घुटन पैदा करने वाली थी। पर वह तो बहुत ही बुरे के लिए तैयार था, इसलिए उसे कोई विशेष परेशानी नहीं हुई।

उसे राजनीतिक कैदियों में रखा गया, यद्यपि जेल की उन दिनों की भाषा के अनुसार कोई कैदी राजनीतिक माना नहीं जाता था। जिस बैरक में वह रखा गया, वह इस समय खिलाफती बैरक के नाम से प्रसिद्ध था। यह एक अजीब बात थी, पर उन दिनों सब राजनीतिक कैदी खिलाफती कैदी कहलाते थे।

महात्मा गांधी ने असहयोग के लिए दो मुख्य कारण बतलाए थे, एक तो जलियानवाला हत्याकांड और दूसरा खलीफा के प्रति किए गए अन्याय। दूसरा कारण राजनीतिक नहीं था और एक हद तक अद्भुत् इस अर्थ में था कि इसके द्वारा अरब और तुर्की संसार के सम्बन्ध में एक व्यवस्था की सिफ़ारिश की गई थी, चाहे उसे स्वयं अरब चाहें या न चाहें। बाद को स्वयं तुर्कियों ने खलीफा को निकाल बाहर किया, इसलिए खलीफा को अरब तथा तुर्की जगत् का प्रधान बनाने का आन्दोलन स्वाभाविक मृत्यु से मर गया। फिर भी गांधी जी ने खिलाफत को अपने आन्दोलन के अन्तर्गत कर लिया था, उसे बिलकुल व्यर्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि सामयिक रूप से ही सही भारत के करोड़ों हिन्दुओं और

मुसलमानों ने एकसाथ एक नारा लगाया। अवश्य बाद को चलकर इसकी बुरी प्रतिक्रिया भी हुई, वह यह कि जब खिलाफत आन्दोलन जड़मूल से ही कट गया, तब जो मुसलमान केवल धर्मान्धता के कारण स्वराज्य-आन्दोलन में शरीक हो गए थे, वे फौरन उससे अलग हो गए। जब विभिन्न कारणों से तथा विभिन्न उद्देश्य लेकर लोग किसी काम का बीड़ा उठाते हैं, तो ऐसा होना स्वाभाविक होता है।

जो कुछ भी हो, जेल के अन्दर कांग्रेसी शब्द बहुत बाद को चला, उन दिनों सभी राजनीतिक कैदी खिलाफती कहलाते थे। और एक मज़ेदार बात यहां बता दी जाए कि साधारण कैदी यह नहीं जानते थे कि भारत से कई हज़ार मील की दूरी पर मुसलमानों के एक खलीफा हैं, और उनके साथ अन्याय हुआ है। वे व्याकरण के सब नियमों को तोड़कर खिलाफती शब्द का अर्थ सरकार के खिलाफ चलने वालों से लेते थे। इसी अर्थ में जेलों में खिलाफती शब्द चल निकला था।

राजेन्द्र तथा उसके साथियों को पाकर पहले के राजनीतिक कैदी बहुत खुश हुए और एक बार फिर सारी जेल 'भारतमाता की जय' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से गूंज उठी। हां, दो-चार बार 'अल्लाहो अकबर' के नारे भी लगाए गए।

जेल के कर्मचारी पहले-पहल कैदियों द्वारा की जाने वाली इस प्रकार की नारेबाज़ी पर आपत्ति करते थे, पर इस बीच में जो घटनाएं हुई थीं, और जिस तेज़ी से राजनीतिक कैदी जेलों को भरते जा रहे थे, उससे उनके सारे अनुशासन की धज्जियां उड़ गईं। वे असहाय की तरह इन कैदियों को देखते थे और चुपके से चले जाते थे। बहुत हुआ तो हाते का अड़गड़ा बंद कर देते थे।

जेल के अफसरों में अब यह उच्चाकांक्षा नहीं रह गई थी कि इन कैदियों को सुधारें। वे डरते थे, तो इस बात से कि इन कैदियों के रंग-ढंग का प्रभाव साधारण कैदियों पर न पड़ जाए। सच तो यह है कि साधारण कैदियों में इनका प्रभाव बहुत अधिक पड़ने लगा था। अब वे भी जब-तब अधिकार और न्याय की बात करने लगे थे, घूस का बाज़ार ठंडा पड़ता जा रहा था।

थोड़ी ही देर में पहले आए हुए साथियों ने राजेन्द्र तथा अन्य लोगों के ज्ञान में बहुत वृद्धि कर दी। सबसे अजीब बात जो राजेन्द्र को मालूम हुई, वह यह थी कि जेलों में आटा पैर से गूंधा जाता है। अवश्य इस प्रकार आटा गूंधने वाले ब्राह्मण या ठाकुर होते थे, रोटी सेंकने और दाल-भुजिया बनाने वाले तो ब्राह्मण ही होते थे।

रामचन्द्र जो लगभग पांच दिन पहले जेल में आया था, बोला—बहुत दिनों तक तो हमारे साथियों को पता ही नहीं लगा कि यहां आटा पैर से गूंधा जाता है। बात यह है कि जेल का लंगर दूसरे चक्कर में है। एक दिन किसी काम से हमारा एक साथी उधर से अस्पताल जा रहा था, उसने सारी बात प्रत्यक्ष देखी। बस हम लोगों ने इसपर झगड़ा मचाना शुरू कर दिया। अब परिस्थिति यह है कि साधारण कैदियों का आटा पैर से गूंधा जाता है, पर हम लोगों का आटा हाथ से गूंधा जाता है।

त्रिलोचन, जो अपने को इस नाते बहुत सीनियर मानता था कि वह रामचन्द्र से भी आठ दिन पहले जेल आया था, रामचन्द्र पर मन ही मन कुढ़ रहा था कि यह जेल की बातों पर क्यों बढ़-बढ़कर बात मार रहा है, बोला—कहा तो जाता है कि हमारा आटा हाथ से गूंधा जाता है, पर कौन जाने क्या होता है। मुझे तो एक नम्बरदार ने बताया है कि सारी बात झूठी है।

राजेन्द्र बोला—हमारा एक आदमी क्यों न लंगर पर मौजूद रहे ?

रामचन्द्र बोला—क्या हम लोगों ने यह बात नहीं कही है ? हमने इस बात की मांग की, पर जेलर कहता है कि हममें से कोई आदमी वहां जाएगा, तो सब रोटी छू जाएगी।

राजेन्द्र ने पूछा—इसके क्या माने ?

त्रिलोचन जल्दी से बीच में बोल पड़ा—हम लोगों में से कई खाने-पीने में छूत-छात नहीं मानते। हिन्दू-मुसलमान भाई सब एकसाथ बैठकर खाना खा लेते हैं, इसलिए मामूली कैदी हमसे छूत मानते हैं।

राजेन्द्र बोला—यह अजीब बात है कि चोर, डाकू, बदकार और बदमाश हमसे छूत मानते हैं···

राजेन्द्र ने इतना ही कहा था कि त्रिलोचन और रामचन्द्र दोनों एक-साथ बोल पड़े मानो कोई भारी अनर्थ रोकना चाहते हों—नहीं, नहीं, सब कैदी खराब थोड़े ही होते हैं।

त्रिलोचन, जिसे खैनी खाने की आदत थी और इन दिनों साधारण कैदियों की कृपा से उसे प्रतिदिन एक चुटकी मिल जाती थी, बोला—अभी आप नये आए हैं। ये कैदी बड़े अच्छे लोग हैं। इनसे हम लोगों को बड़ी मदद मिलती है। ये हमारे भाई हैं। ३१ दिसम्बर आधी रात को जब स्वराज्य होगा तो ये भी हमारे साथ होंगे। क्यों मंगरू होंगे न ?—कहकर उसने एक कैदी पहरेदार से इशारा किया।

मंगरू नाम से सम्बोधित व्यक्ति, जो अब तक सबकी सारी बातें ध्यान से सुन रहा था, अपना झाड़ू छोड़कर आगे बढ़ आया और कुछ लज्जा के साथ हंसते हुए बोला—हम आपके साथ नहीं जाएंगे तो क्या करेंगे ? हम आपसे कोई अलग थोड़े ही हैं ?

राजेन्द्र ने देखा कि यह कुर्ता और जांघिया पहने हुए है और उसके सिर की टोपी पर अंग्रेज़ी में पीतल के तीन हरफ सी० एन० डब्ल्यू० (कानविक्ट नाइट वाचमैन) लिखा हुआ है।

राजेन्द्र ने उस समय और कुछ नहीं कहा। उसे भी यह स्वाभाविक मालूम हुआ कि जब स्वराज्य होगा, तो जेल के सारे कैदी, चाहे वे मामूली कैदी हों या राजनीतिक, छूट जाएंगे।

राजेन्द्र को भी अन्य साथियों की तरह एक फट्टा, एक कम्बल, एक तसला और एक कटोरी मिली। उसे साथियों ने बतलाया कि जब तक उसके मुकदमे का फैसला नहीं हो जाता, तब तक वह अपने कपड़े पहन सकता है और चाहे तो घर से और कपड़े तथा खाना मंगा सकता है। पर उसे इन बातों की फिक्र नहीं थी। वह तो और ही विचारों में डूबा हुआ था। उसने योंही अपने जेल के साथियों को खबर-सी देते हुए कहा—आज पिकेटिंग में दो स्त्रियां भी पकड़ी गई हैं।

त्रिलोचन इस बात पर खुशी से उछल पड़ा, बोला—तब तो स्वराज्य होने में किसी तरह का सन्देह नहीं रहा।

राजेन्द्र उसके उत्साह में उसी खुशी से भाग न ले सका। बोला—

कहीं उनपर ज़्यादती हुई तो ? पता नहीं उन्हें कहां रखा गया है।—कहकर उसने जेल की रहस्य-भरी दीवारों की ओर देखा।

त्रिलोचन बोला—आज दिन के दो बजे से औरत जेल में भी नारे लग रहे हैं। मैंने यही समझा था कि मामूली कैदिनें हमारी सहानुभूति में नारे लगा रही हैं, पर अब असली बात मालूम हुई।

राजेन्द्र ने पूछा—औरत जेल कहां है ?

रामचन्द्र आगे बढ़कर बोला—हमारे हाते के बाद दोबाड़ों का हाता है, उसके बाद ही औरत जेल है। दोनों जेलों के सुपरिण्टेण्डेण्ट एक ही हैं। हां, औरत जेल की जेलर एक मेम है।

मंगरू ने त्रिलोचन को अलग बुला लिया, फिर कहा—मैं अभी सारी ख़बर लाता हूं।

कहकर वह चला गया और त्रिलोचन ने आकर सबसे कहा—पूरी ख़बर थोड़ी देर में मिल जाएगी।—कहकर उसने आंख मारते हुए कहा—ये कैदी बड़े अच्छे लोग हैं, अगर ये न हों तो हमारी जेल न कटे।

राजेन्द्र अब त्रिलोचन के पास गया और उससे बातें करने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि त्रिलोचन किसी दुकान में नौकर था। राजनीति से उसको कोई मतलब नहीं था, कभी किसी सभा में नहीं गया था, पर कुछ दिन पहले वह दुकान में जा रहा था, इतने में कांग्रेस का एक जुलूस आया। इस जुलूस का नेतृत्व प्रसिद्ध नेता डा० अब्दुल करीम कर रहे थे। वह भी जुलूस देखने के लिए सड़क पर खड़ा हो गया। इतने में उसने देखा कि पुलिस का एक जत्था जुलूस के अन्दर घुसकर उसे रोकने की चेष्टा कर रहा है। बस इसपर उसे जोश आ गया, और वह नारे लगाता हुआ गिरफ्तार हो गया। घर में विधवा मां, एक छोटी बहन और भाई हैं, जो उसीकी कमाई पर निर्भर हैं। पर उनकी उसे कोई चिन्ता नहीं है।

जेल में आकर उसे एक दिन तम्बाकू का कष्ट हुआ था क्योंकि वह बीड़ी पीने का अभ्यस्त था, पर यहां उसने खैनी खानी सीख ली है, जिससे कि एक बीड़ी-भर के तम्बाकू से सारा दिन मजे में निकल जाता है।

अदालत ने उसे तीन महीने की महेश (महज) कैद दी है। इस सम्बन्ध में उसे अफसोस यह है कि ३१ दिसम्बर की आधी रात से पहले

ही वह छूट जाएगा। उसकी मानसिक इच्छा यही है कि अब जब पकड़ा गया है, तो स्वतंत्र भारत में ही छूटे, पर ललमुंहे मजिस्ट्रेट की कलम पर कोई वश नहीं था। थोड़े समय के लिए उसे पहले छूटना पड़ेगा।

राजेन्द्र ने कहा—सो क्या हुआ ? तुम फिर जेल चले आना।

त्रिलोचन बोला—चला तो आऊं, पर उधर घर में फाका हो रहा है। मां इस इतवार को आई थी तो यह बता गई। मैंने कहा, "धीरज धरो, स्वराज्य होने में देर नहीं है।"

—वह बोली—मैं दुकान में गई थी कि कुछ पेशगी दे दो, तो मालिक ने कहा, "अब तुम्हारे लड़के से मेरा कोई वास्ता नहीं।"

—इसपर मां ने कहा—आप तो खद्दर पहनते हो, कांग्रेस में चन्दा देते हो, फिर क्या बात है ? मेरा लड़का कोई चोर-उचक्का थोड़े ही है ?

—पर वह नहीं माना। वह यही कहता रहा, "चन्दा देता हूं वह और बात है, जेल जाना और बात। व्यापार है, कोई हंसी-खेल नहीं।"

राजेन्द्र सब कुछ सुनकर बोला—तुम चिन्ता मत करो, मैं अपनी मां को ख़बर भिजवा दूंगा। वह सब कुछ संभाल लेंगी।

त्रिलोचन बहुत ही खुश हुआ और बोला—अभी मंगरू आए तो मैं काग़ज़-पेंसिल मंगा दूंगा। फिर आप एक चिट्ठी लिख दें, जिसे मैं तिकड़म से बाहर भेज दूंगा।

राजेन्द्र ने पूछा—तिकड़म क्या ?

त्रिलोचन बोला—तिकड़म जेल का शब्द है। यह कैदियों के लिए कल्पवृक्ष है। इसके ज़रिये से उनके सब काम बनते हैं। नमक चाहिए तिकड़म करो, तम्बाकू चाहिए तिकड़म करो, गुड़ चाहिए तिकड़म करो। बाहर ख़बर भेजना, गाहे-बगाहे अखबार मंगा लेना, सब तिकड़म से होता है। आप रहते-रहते समझ जाएंगे कि तिकड़म के क्या माने हैं ?

राजेन्द्र इस प्रकार पहले ही दिन जेल के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान गया। उसके ज्ञान में बराबर वृद्धि होती जा रही थी। निस्संदेह यह एक न्यारी दुनिया है।

राजेन्द्र को देर तक त्रिलोचन से अलग बात करते देखकर कई लोग अप्रसन्न हो रहे थे। पहला मौका पाते ही रामचन्द्र ने कहा—आप इससे

इतनी बातें न करें। यह तो ऐसे ही जेल में आ गया। आपने यह देखा कि इसके कपड़े बिल्कुल विलायती हैं। दिन-भर कैदियों से खुसुर-फुसुर करता रहता है। उनसे खैनी मांग कर खाता है। आपसे कुछ मांगा तो नहीं?

राजेन्द्र ने कहा—नहीं, मुझसे तो कुछ भी नहीं मांगा।

उसे थोड़ी-थोड़ी निराशा हुई कि राजनीतिक कैदी आपस में इस तरह लड़ते क्यों हैं। त्रिलोचन जैसे भी आया हो, वह बड़ा त्याग करके आया है। माना कि खद्दर पहनना बहुत जरूरी है, पर इसे तो खद्दर पहनने का समय ही नहीं मिला। क्या जेल आने से उसके बदन पर पड़े हुए विदेशी कपड़े खद्दर की तरह पवित्र नहीं हो गए? उसने रामचन्द्र को समझाया—महात्मा जी ने हमारी आंखें खोल दीं, नहीं तो हम सभी लोग विलायती पहनते थे।

—पर यह तो तिकड़म करता है, जिसे महात्मा जी ने बिल्कुल मना किया है।

राजेन्द्र इन दिनों बराबर महात्मा जी के सारे वक्तव्य पढ़ता था, उनका 'यंग इण्डिया' उसके लिए वेद बन गया था, पर उसने कहीं तो इस बात को नहीं पढ़ा था। फिर बोला—यह भी तो देखिए कि यह बेचारा ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है।

रामचन्द्र इस बात को देखने के लिए तैयार नहीं था। वह त्रिलोचन के तिकड़म के विरुद्ध इसलिए था कि यद्यपि इस बैरक के सभी कैदी रामचन्द्र को मानते थे, फिर भी त्रिलोचन के हाथ में तिकड़म एक ऐसा अस्त्र था, जिसके कारण सब लोग उसे छोड़कर त्रिलोचन के पास जाते थे।

अब तक जितने लोग पकड़कर आए थे, उनमें राजेन्द्र सबसे अधिक पढ़ा-लिखा था, इसलिए उसको लोगों ने आसानी से नेता मान लिया। जब अगले दिन सवेरा होते-होते उसके घर से बहुत-सी मिठाइयां, नमकीन आदि आए और उसने अपने लिए कुछ न रखकर उन्हें अपने सब साथियों में और कैदियों में बांट दिया, तो सब लोग उसकी वाहवाही करने लगे। उसके घर से बल्कि यों कहना चाहिए कि उसके लिए खरीदकर एक चर्खा भी आया था, पर जेल-अधिकारियों ने उसे लेने से इन्कार कर

दिया।

जेलर खैरात नबी मिठाइयों और नमकीनों पर हिस्सा बैठा चुका था, कुछ तो राज़ी से कुछ गैर-राज़ी से और बहुत प्रभावित हुआ था। यदि राजेन्द्र राजनीतिक कैदी न होकर मामूली कैदी होता, तब तो उसके पौबारह होते, पर भागते भूत की लंगोटी ही बहुत समझकर उसने अपने विश्वस्त कैदियों के द्वारा (लोग तो इसलिए जेलों में भेजे जाते हैं कि वे सुधरें, पर जेलर क्या सभी जेल-कर्मचारी अपने स्वार्थ के अनुसार उन्हें चोरी करना, मुखबिरी करना, झूठ बोलना सिखाते थे) चौथाई माल उड़वा दिया था। वह स्वयं टोकरियों के साथ खिलाफती कैदियों के बैरक तक गया और ऐसे खुशामदाना ढंग से पेश आया कि राजेन्द्र यह कहे बिना न रह सका—खां साहब, आप भी कुछ नोश फर्माइए···

पर जेलर ने कहा—यों ही लोग मुझे बुरा-भला कहते हैं, अगर मैं आपकी चीज़ खाऊं, तो लोग यही कहेंगे कि जेलर साहब खाऊ हैं। आप ही लोग खाइए···

पर जब राजेन्द्र और त्रिलोचन ने बहुत अनुरोध किया, तो वह बोला—अच्छी बात है, कुछ मिठाइयां अलग कर दीजिए, मैं इस नाते खाऊंगा कि कहीं उनमें कोई ज़हर तो नहीं पड़ा है। कानून के मुताबिक खाने-पीने की चीज़ की अच्छी तरह जांच करने के बाद ही हम उसे कैदियों के हवाले कर सकते हैं···

इस प्रकार से जेलर चखने के लिए एक और टोकरी घर पर ले गया। जाते समय वह बड़ा नम्र होकर बोला—किसीसे कहिएगा नहीं, आपकी वाल्दा (माताजी) ने एक चर्खा भिजवाया था, पर हम उसे ले नहीं सकते थे। हम तो कानून के बन्दे हैं, अगर जेल-मैनुअल में कोई बात नहीं है, तो हम उसे कर नहीं सकते। यों तो जेलों में हमेशा से चर्खे चलते हैं, हम इसमें कोई बुराई नहीं देखते। पर कानून कानून ही है।

त्रिलोचन जेलर की सब बातें जानता था, पर इस समय कुछ नहीं बोला। मिठाइयों और नमकीनों की खुशबू से उसका मन प्रफुल्लित हो रहा था। वह चाहता था कि जेलर किसी तरह टले। काश इस समय एक बीड़ी भी मिल जाती।

राजेन्द्र ने मिठाइयों को सब लोगों में बराबर बांट दिया। त्रिलोचन ने अपने हिस्से से दो-एक मिठाई बचाकर मंगरू तथा अन्य कैदियों को दिया, जिनसे वह खैनी खाता था और खबरें मंगाता था। इस समय तो उसे मंगरू की सेवा की और भी ज़रूरत थी। राजेन्द्र की मां को एक पत्र भी भिजवाना था।

उसी दिन शाम तक राजेन्द्र ने वह पत्र लिख दिया और वह पत्र एक वार्डर के हाथ उसी रात को उषादेवी को मिल भी गया। उन्होंने भी वार्डर के हाथ बेटे को एक पत्र भेजा, जिसमें श्यामा के सम्बन्ध में भी कुछ बातें थीं :

"श्यामा तथा रूपवतीदेवी कल ही छोड़ दी गईं। श्यामा का कहना है कि रायबहादुर बंशीधर के प्रभाव के कारण ऐसा हुआ। कुछ भी हो श्यामा ने लौटकर घर जाने से इनकार किया। मैंने उसे अपने पास रखना चाहा, पर उसने यह कहकर मेरे साथ रहने से इनकार कर दिया कि जब वही इस घर में नहीं रह सके, तो मैं किस मुंह से रहूंगी। इस कारण वह रूपवतीदेवी के घर में उसी कमरे में रहती है, जहां तुम रहे थे। तुम्हारी रस्सी वाली चारपाई और चर्खा जहां के तहां हैं, पर तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि श्यामा ने अपने लिए पलंग आदि सब सामान मंगा लिया है। मैंने कहा भी कि तुम जेल जाने की प्रैक्टिस नहीं करोगी? इसपर वह हंसकर बोली, 'आपने बच्चों को इतनी अच्छी शिक्षा दी। क्या आपने उसकी कभी प्रैक्टिस की थी? स्त्रियां स्वभाव से ही कष्ट सहने की आदी होती हैं।' "

राजेन्द्र पत्र पढ़कर मुग्ध हो गया। मां का स्नेह और साथ ही साथ श्यामा की नटखट बातें। वह तो भूल ही गयी था कि चिट्ठी केसाथ एक छोटी-सी पोटली भी थी, जिसमें कुछ जरूरी चीजें जैसे कागज़, पेंसिल, कुछ रुपये और सिगरेटों का एक डिब्बा भी था। राजेन्द्र को सिगरेट के डिब्बे पर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि वह कभी पीता नहीं था, पर वह समझ गया कि त्रिलोचन ने ज़बानी कहलवाया होगा। थोड़ी ही देर में त्रिलोचन फक-फक सिगरेट पी रहा था और रामचन्द्र उसकी तरफ आग्नेय नेत्रों से देख रहा था।

९

अगले दिन त्रिलोचन ने एकाएक राजेन्द्र से कहा—उस दिन बड़ी भारी गलती हो गई।

—क्या ?—राजेन्द्र ने आश्चर्य के साथ पूछा।

—मिठाइयां बंटीं, पर हमें बमगोले वालों की याद ही नहीं रही। उन्हें भी कुछ मिठाई भेजनी चाहिए थी।

राजेन्द्र ने पूछा—बमगोले वाले कौन ?

त्रिलोचन बोला—जेल में क्रान्तिकारियों को बमगोले वाले कहा जाता है। इनमें से कुछ तो १९१९ की आम माफी में छूट गए, पर कुछ को अभी तक छोड़ा नहीं गया है। बात यह है कि इन्हें क्रान्तिकारी कैदी माना ही नहीं गया, ये मामूली कैदी माने जाते हैं।

—क्या तुम इनसे कभी मिले हो ?

—हां, एक-आध बार भेंट हो गई है, बड़े सज्जन हैं। हम लोगों को देखकर बहुत खुश होते हैं और कहते हैं कि उनका दुर्भाग्य है कि वे इस आन्दोलन में भाग नहीं ले सके।

राजेन्द्र कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला—खैर अब देर ही क्या है ? ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य हो ही जाएगा, तब इनको जेल के बाहर जाने का मौका मिलेगा।

त्रिलोचन कुछ झिझकते हुए बोला—मैंने भी यह बात उनसे कही, पर वे लोग इस बात पर हंस देते हैं।

राजेन्द्र ने उत्तेजित होकर कहा—वे क्या कहते हैं ?

—कुछ कहते नहीं, बस हंस देते हैं।

राजेन्द्र तिलमिलाकर बोला—फिर वे राजनीतिक कैदी कैसे हैं ?

मुझे तो कुछ दाल में काला मालूम देता है।

त्रिलोचन बोला—नहीं, हैं तो वे उसी गिरोह के जिसने लार्ड हार्डिङ्ग पर बम का गोला फेंका था, पर वे न तो चर्खे में विश्वास रखते हैं और न यही समझते हैं कि अंग्रेज आसानी से इस देश को छोड़ेंगे···

—तुम तो कह रहे थे कि वे इस आन्दोलन में भाग लेना चाहते हैं।

—हां, उन्हें महात्मा गांधी पर विश्वास है क्योंकि जनता उनके साथ हो गई है, पर अंग्रेजों के सम्बन्ध में उनका अविश्वास इतना अधिक है कि वे यह मानते ही नहीं कि अंग्रेज केवल नैतिक दबाव से मानेंगे।

राजेन्द्र के लिए ये बातें बिल्कुल नई थीं। बोला—तुमने तो कहा कि तुम उनसे दो-एक बार ही मिले हो, पर तुम्हें तो उनके दृष्टिकोण के सम्बन्ध में ब्योरेवार ज्ञान है।

त्रिलोचन लज्जित-सा होकर हंसते हुए बोला—भेंट तो दो-तीन बार ही हुई है, पर चिट्ठी-पत्री बराबर होती रहती है। हम देश की खबरें तथा अखबार की कटिंग की लेनेदेन करते हैं, वे हमें बराबर अपने विचार लिख भेजते हैं।

दोनों में यह बातचीत बाकी सब राजनीतिक कैदियों के सामने हो रही थी। रामचन्द्र मौका पाकर बीच में बोल पड़ा—मैंने त्रिलोचन को बार-बार मना किया कि इन लोगों से मेलजोल मत बढ़ाओ, ये हिंसा के पुजारी हैं, इसलिए देशद्रोही हैं, पर त्रिलोचन मेरी बात नहीं मानता। सबसे बुरी बात यह है कि त्रिलोचन उधर से आए हुए पत्र लोगों को पढ़-पढ़कर सुनाता है। इन पत्रों का परिणाम यह हुआ कि एक आदमी माफी मांगकर चला गया।

त्रिलोचन ने प्रतिवाद करते हुए कहा—वह तो अफीमची था, उसे तीन दिन तक अफीम नहीं मिली, तो वह बिल्कुल मुर्दार हो गया और मौका मिलते ही माफी मांगकर चला गया। यद्यपि जिस दिन आया था, उस दिन वह बहुत शेर बन रहा था और हमारे मना करने पर भी जेलर की हाय-हाय और क्या-क्या बोल रहा था।

रामचन्द्र तेज़ी के साथ बोला—मैं तो कहता हूं कि अफीमची हो, कुछ भी हो, वह डटा रहता, पर तुमने यह जो सुना दिया कि बमगोले

वाले समझते हैं कि ३१ दिसम्बर को स्वराज्य नहीं होगा, इससे उसका दिल टूट गया और वह घबड़ाकर माफी मांगकर चला गया।

—तो सच्ची बात कहने में हर्ज ही क्या है ?

अब तो रामचन्द्र जैसे ताल ठोककर आगे आ गया। बोला—देखिए राजेन्द्र भैया, इसको स्वयं भी विश्वास नहीं है कि ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य होगा। यानी इसका अर्थ यह हुआ कि यह महाशय गांधी जी से भी अधिक बुद्धिमान है। मुझे तो डर है कि त्रिलोचन किसी दिन माफी मांगकर न चला जाए···

अब तो त्रिलोचन आपे से बाहर हो गया, बोला—मैंने तो दिल कड़ा कर लिया। मेरे सामने तो इन बमगोले वालों का आदर्श है, जिन्हें तुम पथभ्रष्ट कहते हो और जो कई सालों से जेलों में सड़ रहे हैं, पर मुझे तो डर उन लोगों से है, जो समझते हैं कि स्वराज्य कोई घुट्टी है जिसे कोई पिला देगा और आसानी से हो जाएगा।

अब तो दोनों पक्षों में मारपीट की नौबत आई। अधिकांश कैदी इस मामले में रामचन्द्र के साथ थे, पर दो-चार त्रिलोचन के भी साथ थे। राजेन्द्र के कोमल मन को भी बड़ा धक्का-सा लगा था कि ऐसे भी अधम भारतवासी मौजूद हैं, जो महात्मा जी की बातों पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं करते।

उसके मन में भी कथित बमगोले वालों पर बड़ी अश्रद्धा उत्पन्न हुई थी, पर दोनों पक्षों में मारपीट की नौबत पहुंचते देखकर उसने समझ लिया कि परिस्थिति को संभालने का भार उसीपर आ पड़ा है। इसलिए बीच-बचाव करता हुआ बोला—मैं समझता हूं कि त्रिलोचन स्वयं चाहे जो कुछ करें, उन्हें दूसरे व्यक्तियों का विश्वास भंग करने का अधिकार नहीं है। जब अफीमची कमजोर पड़ रहा था, तो उससे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए थीं। फिर भी मैं समझता हूं कि रामचन्द्र ने यह जो कहा कि त्रिलोचन माफी मांग लेंगे, यह भी उचित नहीं है। आप लोग शान्ति से रहें, नहीं तो जेल वाले बीच में पड़ेंगे जो किसीके लिए अच्छा न होगा।

उस घड़ी से राजेन्द्र अपनी बैरक के सब राजनीतिक कैदियों का नेता

बन गया। सभी उसके पास आते थे। जो नये लोग आते वे भी राजेन्द्र को अपना नेता मान लेते थे।

जब कई दिन बाद फिर मिठाई की टोकरियां आईं, तब थोड़ी देर के लिए राजेन्द्र धर्मसंकट में पड़ गया। इस बीच में उसे पूरा विश्वास हो गया था कि कथित बमगोले वाले यानी अविनाश और रामानन्द मंजे हुए देशभक्त हैं, पर अंग्रेज़ों से वे बहुत घृणा करते हैं और उनका हृदय-परिवर्तन हो सकता है, इस बात को मानने से इनकार करते हैं।

उसने रामचन्द्र को ले जाकर अलग समझाया—मिठाइयां आई हैं, मेरी राय से थोड़ी मिठाई अविनाश और रामानन्द को भेजने में कोई हर्ज नहीं है।

रामचन्द्र ने इसका विरोध नहीं किया, बोला—जब हम चोर-बद-माशों में मिठाई बांटते हैं, तो उन्हें मिठाई भेजने में कोई हर्ज नहीं है, फिर हम तो सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं और यह विश्वास करते हैं कि कोई कितना भी पथभ्रष्ट हो, यदि उसके साथ प्रेम का बर्ताव किया जाए, तो उसका हृदय-परिवर्तन हो सकता है।

इस प्रकार एक संकट तो पार हुआ, पर उनके पास मिठाई तो त्रिलोचन के साधनों यानी चोरी से भेजना था। ज्योंही त्रिलोचन से कहा गया कि उन लोगों को मिठाई भिजवा दो, त्योंही त्रिलोचन बोला—उनकी तरफ से पहले ही खबर आ चुकी है कि किसी प्रकार की खाने-पीने की चीज़ें उन्हें कभी न भेजी जाएं। वे कहते हैं कि दिमाग के लिए खुराक भेजो, हम लोगों के पेट के गड्ढे भरने का भार तो सरकार पर है...

—तो क्या उनको उस दिन के झगड़े की खबर मिल गई थी? —कहकर राजेन्द्र ने त्रिलोचन की तरफ अप्रसन्न मुद्रा से देखा, क्योंकि उसे संदेह हो गया कि त्रिलोचन ने खबर भेजी होगी तभी यह परिस्थिति उत्पन्न हुई।

त्रिलोचन बोला—उन्हें कौन-सी खबर नहीं मिलती? मंगरू अविनाश जी का पक्का चेला है, वह तो हमें इसी नाते मानता है कि अविनाश जी हम लोगों को मानते हैं।

राजेन्द्र ने इसपर स्वयं अविनाश को एक पत्र लिखा, पर उधर से यही उत्तर आया—आप लोग हमारे भाई हैं, जैसे आपने खाया, वैसे हमने खाया। हम तो अब छूटकर ही मेवा-मिठाई खाएंगे। उससे पहले कटिया रोटी ही हमारे लिए मेवा है। धन्यवाद।

राजेन्द्र को इस बात से कहीं पर कुछ खटका-सा लगा। उसके मन में यह बात आई कि ये कैसे लोग हैं, जो वर्षों से जेलों में पड़े हैं, पर न तो इनमें लोभ है और न किसी और प्रकार की इच्छा। उनके विषय में साधारण कैदी हमेशा सम्मान से बात करते थे और जेलर उनसे डरते थे। अवश्य जेलर के डरने का कारण उनका नैतिक दबाव नहीं, बल्कि उनकी संगठन-शक्ति और इस क्षेत्र में मामूली कैदियों पर उनका प्रभाव था, जिसका प्रयोग कर वे जेल में उत्पात तथा विद्रोह मचा सकते थे।

नहीं, वे सबके सब किराये के टट्टू न होते हुए भी किराये के टट्टुओं की ही तरह घृणित और तुच्छ थे। बात यह है कि उनपर किसी तरह का नैतिक प्रभाव नहीं था। वे तो केवल स्वार्थ पर चल रहे थे। वे स्वार्थी लोग थे, जबकि आन्दोलन में लोग त्याग की भावना से भाग ले रहे थे।

प्रारंभ में ऐसे लोगों में एक मात्रा तक कदाचित् यह विश्वास था कि ब्रिटिश शासन को स्थायी बनाए रखने की चेष्टा करके वे एक बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, पर ज्यों-ज्यों दिन निकलते गए और नित्य प्रति जुलूस, सभाएं होती रहीं और लोग सैकड़ों की संख्या में जेलों में भरे जाते रहे, त्यों-त्यों उनके विश्वास का पेंदा भी निकलता चला गया।

फिर भी ब्रिटिश शासन आसानी से घुटने टेकने वाला नहीं था। वह यह आशा करता था कि कोई न कोई बात ऐसी होगी जिससे मैदान उसीके हाथ रहेगा। साम्राज्य तो ईश्वर का दान था न? उसका उद्देश्य तो परम पावन भगवान की महिमा का प्रचार करना था।

इस बीच में साम्राज्य तरह-तरह के हथकंडे इस्तेमाल कर रहा था। यदि गांधी जी ने अपने आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए धर्म से अनुप्रेरणा ली क्योंकि उनके निकट सभी कुछ धर्म था, तो ब्रिटिश सरकार भी इस क्षेत्र में पीछे रहने वाली नहीं थी। उसके लिए धर्म का उपयोग इसलिए और भी आसान था कि धर्म के परम्परागत ठेकेदार यानी पंडे, पुरोहित, महामहोपाध्याय, मुल्ला, मौलवी सब टके-टके पर बिकाऊ थे और ब्रिटिश सरकार से ऊंची बोली और कौन बोल सकता था? ईसाई पादरी तो ब्रिटिश सरकार के साथ थे ही। यों तो ब्रिटिश शासन धर्म-निरपेक्ष बनता था, पर गिर्जे और पादरियों को सहायता के रूप में बड़ी रकमें मिलती थीं। काशी और अन्य स्थानों के पंडित तो मानो प्रतिक्रिया के ठेकेदार थे। अवश्य इनमें कुछ लोग राष्ट्रीय आन्दोलन से सहानुभूति रखते थे, बाकी ब्रिटिश सरकार के साथ थे।

एक दिन श्यामा ने सुना कि दशाश्वमेध घाट पर एक विराट सभा होने वाली है, जिसमें दो-तीन महाराजा तथा राजा रहेंगे, इसके अतिरिक्त कई महामहोपाध्याय भाषण देंगे। उसने रूपवती से कहा—चलिए हम लोग भी सभा देख आएं।

रूपवती सभा में जाने के लिए उत्सुक नहीं थी। बोली—हमें सभाओं में कोई दिलचस्पी नहीं है। किराये के टट्टुओं के भाषण भला क्या सुनना।

पर श्यामा नहीं मानी, तब रूपवती ने कहा—तुम अपने चाचा जी को ले जाओ।

चाचा जी से मतलब आनन्दकुमार से था, जो रूपवती के पति थे। उन्हें लोग थियोसोफिस्ट के रूप में जानते थे। बड़े निरीह व्यक्ति थे। जब देखो तब पढ़ने-लिखने में लगे रहते थे। दाढ़ी फ्रेंचकट थी, बाल कुछ बड़े-बड़े और पीछे की ओर लौटे हुए थे। रंग गोरा और आंख बड़ी-बड़ी होने के कारण कुछ लोग उन्हें पीठ पीछे मोशिए पोयांकारे कहते थे, जो उन दिनों यूरोप के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ थे।

आनन्दकुमार ने शायद कुछ दिन डिप्टी मजिस्ट्रेटी भी की थी, पर वह बहुत पुरानी बात है। पुश्तैनी जमींदारी की आमदनी इतनी अधिक थी कि कभी उन्हें किसी बात की कमी नहीं हुई।

घर में इतनी बातें हो गईं पर वे किसी मामले में कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे। उन्होंने शादी के पहले ही दिन से यह मान लिया था कि रूपवती जो कुछ करेगी, वह ठीक ही होगा। हां, जिस दिन वह जेल गई थी, उस दिन उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ था। आश्चर्य इसलिए नहीं हुआ था कि वह जेल गई, बल्कि इसलिए कि घर कुछ सूना यानी जैसा पहले लगता था उससे अलग तरह का लगा था। जब रूपवती लौट आई तो उन्होंने हंसते-हंसते जैसे वे अरस्तू की पुस्तक से कोई उद्धरण सुना रहे हों, यह कहा था—घर कुछ सूना लगा था।

बांझ होने के कारण रूपवती पर इसका अपने ढंग असर हुआ था। तब से वह राजनीति के पचड़े में अधिक पड़ना नहीं चाहती थी। श्यामा ने कई बार कहा था—चलिए हम लोग फिर से पिकेटिंग करें, देखें वे कैसे नहीं गिरफ्तार करते हैं।

पर रूपवती ने यह कहकर टाल दिया था—वे गिरफ्तार तो करेंगे नहीं, व्यर्थ में परेशानी क्यों मोल लेनी है।

इसी कारण श्यामा चर्खा कातती थी और जब-तब अकेली सभाओं

में जाती थी। अब चर्खे के सामने राजेन्द्र का एक फोटो भी रखा रहता था, जिसे वह उषादेवी के यहां से ले आई थी। इस बीच में खबर मिली थी कि राजेन्द्र को छः मास सख्त कैद की सज़ा हो गई। पर उससे राजेन्द्र के जेल-जीवन में कोई फर्क नहीं आया था क्योंकि जेल वाले अभी हवालातियों तथा महज़ कैदियों को एक साथ रखते थे।

जिस दिन राजेन्द्र का मुकदमा हुआ था, उस दिन श्यामा मुकदमा देखने के लिए गई थी। रूपवती भी गई थी, उधर से उषादेवी भी आई थीं और उनके साथ कोई अपरिचित महिला भी थी, जो संभवतः राजेन्द्र की मौसी थी। चेहरे से ऐसा ही लगता था, पर भगवान जाने कौन थी।

इसके अलावा दो-तीन सौ लोग और भी थे।

बात यह है कि अकेले राजेन्द्र का मुकदमा नहीं था, बल्कि राजेन्द्र के साथ जो चार स्वयंसेवक और गिरफ्तार थे, उन सबका मुकदमा एकसाथ हो रहा था।

इन दिनों बहुत प्रभावशाली लोगों का मुकदमा कई बार जेल के अन्दर भी होता था, पर राजेन्द्र का मुकदमा खुली अदालत में हो रहा था। किसी पत्र में यह नहीं छपा था कि मुकदमा अमुक स्थान पर हो रहा है, फिर भी अभियुक्तों के रिश्तेदारों से लोगों को पता लग गया था।

बाकी चार स्वयंसेवकों के भी रिश्तेदार आए थे। श्यामा ने देखा कि वे लोग गरीब घरों के थे, और उनमें से कुछ तो बुरी तरह घबड़ाए हुए थे।

अभी मजिस्ट्रेट साहब अदालत में पधारे नहीं थे। अभियुक्त भी अभी अदालत में नहीं लाए गए थे।

पहले अभियुक्त लाए गए। उन लोगों ने अदालत के कमरे में प्रवेश करते ही चिल्ला-चिल्लाकर 'भारतमाता की जय' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाए। जनता ने भी साथ-साथ इन नारों को लगाया। साथ ही साथ राजेन्द्र, भगवतीचरण, मेदिनीप्रसाद, बजरंगप्रसाद और गोपालप्रसाद की जय के नारे भी लगाए गए।

पुलिस वाले पहले ऐसी बातों से घबड़ाते थे, और यह दिखाते थे कि उन्हें ऐसी बातों से बहुत धक्का-सा लगा है, पर अब वे इस प्रकार के

दृश्यों और नारों के अभ्यस्त हो चुके थे। फिर भी उनका काम यह था कि ऐसी बातों को रोकें, इसलिए जो सबइन्सपैक्टर वहां ड्यूटी पर था उसने एकत्रित दर्शकों से कहा—अगर आप लोग शोर मचाएंगे तो अदालत से निकाल दिए जाएंगे।

जनता जानती थी कि पुलिस वालों में इस बात को करके दिखाने की शक्ति है, और वह चाहती थी कि मुकदमे का पूरा दृश्य देखे, इसलिए वह कुछ निर्णय नहीं कर सकी कि ऐसे मौके पर क्या किया जाए। लोग एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

मानो इसका जवाब देते हुए अभियुक्तों ने फिर से नारे लगाए। जनता ने तुरन्त साथ दिया। इसमें से श्यामा की स्त्रियोचित आवाज़ अलग सुनाई पड़ी, जैसे वाद्यवृन्द के अन्दर से वेहाला की आवाज़ स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

पुलिस वाले अभियुक्तों से तो कुछ नहीं बोले, पर वे जनता की तरफ बढ़े। सबइन्सपैक्टर श्यामा के सामने पहुंच गया। पहले तो 'तुम' करके बात करने जा रहा था, पर उसे तथा उसके कपड़े-लत्ते देखकर शायद रोब में आ गया। बोला—अगर आप शोर करेंगी तो हम फौरन कुछ करने के लिए मजबूर होंगे। मजिस्ट्रेट साहब का यह हुक्म है कि अदालत के अन्दर कोई शोर न हो···

कहकर वह अपनी बात को कार्यान्वित करने का कोई प्रयत्न बिना किए ही पीछे की ओर घूम पड़ा।

रूपवती ने श्यामा से कहा—बेटी, चुप रहो, कहीं सचमुच निकाल दिया तो मुकदमा देखने से भी रह जाओगी।

उषादेवी की भी यही राय हुई इसलिए श्यामा को खून का घूंट पीकर चुप रहना पड़ा। उषादेवी बोलीं—बेटी, इस समय हम दर्शक-भर हैं, हमें यह चेष्टा नहीं करनी चाहिए कि हम मंच पर अधिकार जमाएं।

यों तो उषादेवी जो चाहती थीं, रूपवती भी वही चाहती थी, पर उसे ऐसा लगा कि उषादेवी शायद मातृगर्व के कारण अपने लड़के तथा उसके साथियों को बहुत उच्च जगत् का जीव बतलाने के लिए उत्सुक हैं, पर जेल तो श्यामा भी हो आई थी। कुछ घंटों के लिए ही सही। राजेन्द्र

जेल गया, तो वह भी जेल है, और वह गई तो वह भी जेल है। फिर इतने गर्व की क्या बात थी ?

रूपवती बोली—आप ठीक कह रही हैं, पर इस समय सारा भारत ही एक मंच है और अदना से अदना आदमी उसका अभिनेता या अभिनेत्री है। महात्माजी प्रधान नायक हैं, बाकी लोगों में से कोई द्वारपाल है तो कोई अन्य छोटा-मोटा पात्र है। बहन जी ! श्यामा भी तो जेल हो आई है···

जो कुछ भी हो, इन सारी बातों का नतीजा यह हुआ कि दर्शकों की तरफ से कोई जयकारा नहीं लगा। अभियुक्त भी कदाचित् दर्शकों की इस दुविधा को ताड़ गए, इसलिए वे भी चुपचाप कठघरे के अन्दर रखी हुई बेंच पर बैठ गए और आपस में ऐसे बातचीत करने लगे मानो वे तमाशा देखने आए हों। राजेन्द्र कभी मां को, कभी श्यामा को और कभी रूपवती को देख लेता था।

दूसरे अभियुक्त भी अपने-अपने रिश्तेदारों को बीच-बीच में देखते जाते थे। यों जनता को तो सभी देख ही रहे थे।

जिस समय सामने टंगी हुई घड़ी में छोटा कांटा ठीक ग्यारह पर और बड़ा कांटा बारह पर पहुंचा, उस समय मजिस्ट्रेट मिस्टर रैमसे कर्टिस पीछे के दरवाज़े से (जिसके अस्तित्व के सम्बन्ध में दर्शकों को अभी तक कुछ पता नहीं था) अदालत के कक्ष में आए।

मिस्टर कर्टिस अभी बिल्कुल युवक थे। कदाचित् इंग्लैंड के किसी कालेज से सीधे निकलकर आए थे, और आते ही एकदम से जाइंट मजिस्ट्रेट लग गए थे। उन्होंने एक क्षण के लिए चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई पर उसी क्षण अभियुक्तों के कठघरे की ओर से नारे लगने के कारण मुंह कड़ुवा-सा बनाकर कुर्सी पर बैठ गए।

जनता ने भी जवाबी नारे लगाए। मिस्टर कर्टिस इस प्रकार व्यवहार पाने के अभ्यस्त हो चुके थे, पर सबइंस्पेक्टर अभी इस काम में नया फंसा था, वह इस कड़ाके की सर्दी में भी पसीना-पसीना हो गया। उसने जनता की ओर इस तरीके से हाथ जोड़ा कि जनता देख ले, पर मिस्टर कर्टिस या अदालत के अन्य अफसर न देख पाएं।

जनता यहां इस समय होने वाली हर एक बात सुनना चाहती थी। जब उसे हाथ जोड़ने का बहाना मिल गया, वह इतनी शान्त हो गई कि यदि उस समय एक आलपीन भी गिरती, तो उसकी आवाज़ सुनाई पड़ जाती।

सरकारी वकील ने मुकदमा पेश करते हुए कहा—ये लोग अमुक दिन अमुक समय अमुक दुकान के सामने भीड़ कर रहे थे, जिससे शान्ति-भंग का खतरा था। इस नाते इनपर दफा १०७ के अनुसार मुकदमा चलाया गया है।—कहकर सरकारी वकील ने चुनौती-भरी दृष्टि से अभियुक्तों की ओर, और फिर जनता की ओर देखा।

मजिस्ट्रेट मिस्टर कर्टिस ने अभियुक्तों की ओर देखा और उनसे पूछा—इसपर तुम लोग क्या सफाई देना चाहते हो? क्या तुम लोग अपराध स्वीकार करते हो?

चारों साथियों ने राजेन्द्र की ओर देखा। राजेन्द्र ने खड़े होकर कहा—जिस सरकार ने जलियांवाला में हज़ारों निहत्थे लोगों की हत्या की है, जिस सरकार ने खलीफा के साथ अन्याय किया है, जिस सरकार ने रौलट ऐक्ट ऐसा काला कानून तैयार किया है, हम उस शैतानी सल्तनत से कोई सहयोग नहीं करना चाहते···

कहकर वह बैठ गया।

शैतानी सल्तनत शब्द स्वयं गांधी जी के शब्द थे, जिन्हें उन दिनों वे बहुत प्रयोग में लाते थे।

कर्टिस ने मुंह बनाया। पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

राजेन्द्र ने बताया—मेरा नाम राजेन्द्र है।

मजिस्ट्रेट ने सामने रखे हुए कागज़ से मिलाकर देखा। फिर पूछा—तुम्हारे पिता का नाम क्या है?

एक क्षण के लिए राजेन्द्र झिझका, फिर बोला—मेरे पिता का नाम भगवान और मेरी मां का नाम भारतमाता है।

उषादेवी ने एक बार सिर नीचा कर लिया, फिर यह सोचकर मुस्कराई कि लड़का उन्हें भारतमाता कह रहा है।

इसपर कर्टिस ने हाथ के कागज़ की ओर देखकर तेवर चढ़ाए, पर

कुछ नहीं बोला।

इसके बाद उसने भगवतीचरण से पूछा—तुम्हारा क्या नाम है?

वह बोला—मेरा नाम नवंबर है।

सुनकर कर्टिस गंभीर बना रहा।

—तुम्हारे बाप का नाम?

—मेरे बाप का नाम दिसम्बर है।

इसी प्रकार मेदिनीप्रसाद ने अपना नाम जवाहरलाल और बाप का नाम मोतीलाल बताया। गोपालप्रसाद ने अपना नाम शौकतअली बताया; पर मौलाना शौकतअली के बाप का नाम मालूम न होने के कारण उसने अपने पिता का नाम मोहनदास करमचन्द गांधी बताया। यानी जिसके मुंह में जो आया, वह वही कह गया। अदालत से असहयोग जो करना था।

न तो कहने वालों को इसमें कोई बुराई मालूम हुई और न सुनने वालों को। सबने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश शासन का अपमान हो रहा है, अदालत का अपमान हो रहा है, और इतना ही उनकी खुशी और विजय के लिए बहुत था।

सच तो यह है कि इन लोगों के रंग-ढंग देखकर ऐसा ज्ञात हो रहा था कि कुर्सी पर बैठा हुआ अंग्रेज कर्टिस अभियुक्त है और ये लोग जो बेंच पर कठघरे के अन्दर बैठे हैं, वे उसका मुकदमा करने वाले न्यायाधीशों की फुल बेंच हैं।

उन दिनों सब अदालतों और सब मजिस्ट्रेटों का ऐसा ही हाल था। जनता कैदियों को वीर और देवता समझती थी और मजिस्ट्रेटों और उनके सहकारियों यानी सरकारी वकीलों, पेशकारों और पुलिस वालों को असुर।

इस प्रकार देवासुर-संग्राम चालू था, जो हर युग में, हर क्षेत्र में जारी रहता है।

ऐसा ही आज हो रहा था।

सारा मुकदमा एक प्रहसन मालूम हो रहा था। पर ब्रिटिश शासन अपने को कानून से स्थापित सरकार बताता था, उसे कानून का ढोंग तो

रचना ही था, इसलिए एक गवाह पेश किया गया जिसने घिघियाते हुए कहा—ये लोग कपड़े की दुकान के सामने लोगों को कपड़ा खरीदने से रोक रहे थे, जिससे झगड़ा होने का अंदेशा था।

अभियुक्तों की ओर से कोई वकील नहीं था। फिर भी सुनकर भगवतीचरण उर्फ नवम्बर को ताव आ गया। उसने आवाजकशी के ढंग पर कहा—क्या तुम कपड़ा खरीदने आए थे ?

इसपर गवाह घबड़ा गया। वह बगलें झांकने लगा, उसे इस प्रश्न का उत्तर रटाया तो गया ही नहीं था, या हो सकता है रटाया गया हो, पर मौके पर उत्तर स्मरण न आया हो। सरकारी वकील अपने गवाह को विपत्ति में देखकर एक धाय की तरह बच्चे को बचाने के लिए पास आ गए, बोले—तुम कुछ जवाब मत दो जी···

पर कर्टिस, कुछ भी हो, आक्सफोर्ड का स्नातक था। कहां तक आत्मप्रवंचना करता, गवाह से पूछ बैठा—टुम कपरा करीदने गिआ टा ?

वह गवाह और भी घबड़ा गया क्योंकि वह अंग्रेजों की हिन्दी सुनने का अभ्यस्त नहीं था। तब सरकारी वकील ने पूछा—तुम वहां किस काम से गए थे ? साहब तुमसे यही पूछ रहे हैं।

छोटे सरकारी वकील ने धीरे से गवाह से कहा—बोल, मैं कपड़ा खरीद रहा था।

तब गवाह ने कहा—हुजूर, मैं कपड़ा खरीद रहा था।

मजिस्ट्रेट सारी बात समझ गया। ऐसा तो नित्यप्रति होता रहता था। एक प्रश्न पूछकर उसके विवेक की मरहम-पट्टी हो चुकी थी। उसने सबको छः-छः महीने की महज कैद या पांच-पांच सौ रुपये की जमानत और पांच सौ के मुचलके का हुक्म सुना दिया और जिधर से आया था, उधर अंतर्हित हो गया।

इस प्रकार उस दिन ब्रिटिश न्याय की रक्षा हुई थी। जो दण्डित थे उनके चेहरों पर उल्लास की लालिमा थी, जिसे व्यक्त करने के लिए वे बड़े जोर से 'महात्मा गांधी की जय', 'भारतमाता की जय' के नारे

बुलन्द करने लगे। प्रतिध्वनि जैसे ध्वनि का साथ देती है वैसे ही जनता ने इन नारों को और चिल्लाकर प्रसारित कर दिया। मजिस्ट्रेट तो पहले ही भागकर अपनी जान बचा चुका था, पुलिस वाले भी मुंह बनाकर दण्डितों को साथ लेकर भाग निकले।

जब आज रूपवती ने सभा में जाने से इनकार किया, तो श्यामा सचमुच आनन्दकुमार के पास पहुंची। सारी बातें सुनकर वे बोले—इस सभा में जाकर तुम क्यों समय नष्ट करोगी ? आओ मैं तुम्हें ग्रीक दार्शनिक जेनो की बात सुनाता हूं।

पर श्यामा नहीं मानी। वह शरारत के साथ बोली—मुझे ग्रीक दार्शनिक के बनिस्बत भारतीय दार्शनिकों की वाणी सुनना अधिक पसन्द है।

आनन्दकुमार ने अन्त में कहा—बेटी, तुम तो जानती हो कि मैं इन सभाओं में नहीं जाता। फिर मुझे बहुत-से लोग पहचानते हैं। इस कारण बिन बुलाए किसीमें जाना बुरा लगता है।

पर श्यामा ने उनका हाथ पकड़कर घसीटा। नतीजा यह हुआ कि मोटर तैयार हुई और आनन्दकुमार तथा श्यामा उस सभा में पहुंचे। शामियाने के अन्दर एक बहुत सुन्दर शामियाना तना हुआ था, जिसके बांस चांदी से मढ़े हुए थे। रस्सियां भी सुनहरी और रुपहली थीं। मंच बहुत सुन्दर बना हुआ था, जिसमें मखमल के साथ-साथ सोने-चांदी का प्रचुर प्रयोग था। मंच पर अभी कुछ ऊंची पगड़ी वाले पण्डित थे। शायद ये सभी महामहोपाध्याय थे।

थोड़ी ही देर में कई राजा एक के बाद एक आए और अपनी निर्दिष्ट कुर्सियों बल्कि सिंहासनों पर बैठ गए। जनता भी उमड़ी पड़ रही थी। पण्डितों के व्याख्यानों में लोग उतनी दिलचस्पी नहीं रखते थे, जितनी राजाओं के दर्शन में। इन राजाओं के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें प्रसिद्ध थीं, इसलिए मौका मिलते ही जनता उन्हें प्रत्यक्ष देखने के लिए

आई हुई थीं। सभा के आयोजक भीड़ देखकर बहुत प्रसन्न थे।

आनन्दकुमार और श्यामा के बैठने के लिए अच्छी जगह मिल गई। फ्रेंचकट दाढ़ी और सौम्य चेहरे की बदौलत सफेदपोश सिपाही आनन्दकुमार के लिए जगह छोड़ते ही गए और वे मंच के काफी पास पहुंच गए।

आरम्भ में एक पण्डित उठे, जिन्होंने संस्कृत में ब्रिटिश सम्राट की प्रशस्ति पढ़ी। पहले तो दो-तीन श्लोकों तक जनता चुप रही क्योंकि संस्कृत तथा इसी प्रकार न समझ में आने वाली भाषाओं में कही गई चीजों के प्रति सम्मान दिखाना बचपन से ही लोगों के लिए स्वाभाविक हो जाता है, पर जब पण्डित-प्रवर धाराप्रवाह पढ़ते ही चले गए, और देर तक जनता के पल्ले कुछ नहीं पड़ा, तो लोग धीरे-धीरे आपस में बात-चीत करने लगे। श्यामा ने आनन्दकुमार से कहा—चाचा जी, सभी राजा तोंदियल क्यों है ?

आनन्दकुमार संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, इसलिए वे प्रशस्ति को ध्यान से सुन रहे थे। उन्हें बड़ा क्षोभ हो रहा था कि पुराणों तथा काव्यों में जो विशेषण देवताओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं वे ही विशेषण इस प्रशस्ति में ब्रिटिश सम्राट के लिए प्रयुक्त हुए थे।

तव दर्शनमात्रेण दारिद्रयान्मुच्यते नरः।
प्रभूतं यशमाप्नोप्ति प्रभूतं विन्दते धनम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो त्वत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा।
प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि॥
निर्वीर्योऽगुणवान्वापि सत्याचारविवर्जितः।
नरः पौरुषमाप्नोति त्वदाराधनतत्परः॥
त्वन्नामस्मरणाद्राजन् ! पापानि सुमहान्ति च।
भीतानि प्रपलायन्ते तमसो सूर्यदर्शनात्॥

उदाहरणस्वरूप आगे यह कहा गया था—"तुम्हारे दर्शन-मात्र से सारे पाप, कलुष और कल्मष नष्ट हो जाते हैं। नहीं, नहीं, तुम्हारे चित्र को देखते ही सारे पाप इस तरह से भागते हैं जैसे सूर्य-रश्मि के सामने

अन्धकार। तुममें आदित्यों के अंश हैं। तुम आदित्यों से श्रेष्ठ हो, नहीं, नहीं, तुम मनुष्य रूप में ईश्वर हो।" इत्यादि-इत्यादि।

पण्डित महोदय ने इस प्रकार के पचास श्लोक लिखे थे क्योंकि उन्हें आशा थी कि, पचास श्लोकों पर कुछ नहीं तो पचास रुपये तो अवश्य मिलेंगे। उच्चाकांक्षा ने तो कानों में और भी बड़ी रकम की आशा दिलाई थी।

आनन्दकुमार बहुत ध्यान से श्लोक सुन रहे थे। वे केवल संस्कृत के ही नहीं फारसी-अंग्रेज़ी के भी अच्छे ज्ञाता थे। अंग्रेज़ी के ज़रिये से उन्होंने ग्रीक और लैटिन ग्रन्थों का भी अच्छी तरह परायण किया था। यदि कहा जाए कि वे विश्व के क्लासिक साहित्यों के धुरन्धर ज्ञाता थे, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

इन श्लोकों को सुनते-सुनते निरीह प्रकृति आनन्दकुमार को भी साहित्य के इतरीकरण पर क्रोध आ रहा था। यों वे कभी राजद्रोही नहीं रहे और उन्हें राजनीतिक आन्दोलन में कोई दिलचस्पी नहीं थी, यानी इतनी ही दिलचस्पी थी कि जनता को शिक्षित किया जाए, उसे होमरूल के फायदे समझाए जाएं, उसके द्वारा प्रस्ताव पास करवाकर सरकार के पास भेजा जाए, अधिक से अधिक स्वदेशी का इस्तेमाल किया जाए, पर उनके लिए भी इस प्रकार देवभाषा संस्कृत का दुरुपयोग कष्टकर मालूम हो रहा था। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि इस खेल में कहीं कुछ बुराई अवश्य है। बार-बार उनके मन में इस समय वैसी ही भावना हो रही थी, जैसे सुर कट जाने पर किसी संगीतज्ञ की होती है। वे भीतर ही भीतर क्षुब्ध हो रहे थे। उनका मन कटकटा रहा था।

तब तक श्यामा ने पूछा—चाचा जी, ये राजे तोंदियल क्यों हैं? क्या ये आखेट को नहीं जाते?

आनन्दकुमार को अपने क्षोभ को निकालने का जैसे भी हो एक मौका मिल गया, बोले—बेटी, ये काग़ज़ी राजा हैं, काग़ज़ी आखेट खेलते हैं।

—काग़ज़ी आखेट कैसा?

—यही जो यहां हो रहा है।

श्यामा यह तो जानती थी कि आनन्दकुमार संस्कृत के विद्वान हैं,

बोली—यह पण्डित क्या कह रहा है ?

आनन्दकुमार बोले—यह सम्राट की प्रशंसा कर रहा है। और सुनोगी क्या कर रहा है? यह भारत में संस्कृत भाषा की जड़ें खोद रहा है। यह इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि संस्कृत के पण्डित पोंगापन्थी हैं और दो-दो टके पर बिकाऊ हैं।

श्यामा ने कहा—आप तो सम्राट के विरोधी नहीं हैं ?

—नहीं, पर प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान होता है। यह तो सम्राट को साक्षात् ईश्वर बता रहा है, कहता है कि उनके फोटो को देखने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसने तो उनके फोटो की महिमा शंकराचार्य की गंगा से भी बढ़ा दी। सच तो यह है कि इसने शंकर के गंगास्तोत्र से खूब चोरी की है।···

श्यामा कुछ सोचने लगी। इस बीच में पचास श्लोकों का पाठ समाप्त हो गया। तब पण्डित-प्रवर ने कहा—सम्राट की प्रशस्ति तो हो चुकी। अब मैं एक-एक श्लोक उपस्थित राजाओं की प्रशंसा में कहूंगा और अन्त में एक श्लोक इस ज़िले में राजा के प्रतिनिधि होने के नाते मि० स्मिथ पर कहूंगा।

फिर उनका श्लोक-पाठ शुरू हुआ। जनता में बराबर हल्ला होता रहा।

जैसे-तैसे यह पर्व समाप्त हुआ। इसके बाद महामहोपाध्याय षड्-दर्शनाचार्य पद्मनाभ शास्त्री हिन्दी में भाषण देने के लिए खड़े हुए। सभी लोग उनके नाम से परिचित थे। उनका लम्बा तगड़ा सुन्दर चेहरा प्रचीन आर्यों की याद दिलाता था। मोटी शिखा बंधी हुई थी, माथे पर त्रिपुण्ड था और शरीर पर बहुमूल्य दुशाला। उनके खड़े होते ही जनता शान्त हो गई।

शास्त्री जी ने संस्कृत में मंगलाचरण करने के बाद जो दीर्घ भाषण दिया उसका सारांश इस प्रकार है—हम लोगों का काम पढ़ना-पढ़ाना है। राजनीति से हमें कोई प्रयोजन नहीं, पर जब अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए लोग धर्म के नाम पर जनता को भड़काकर अधर्माचरण में प्रवृत्त करते हैं, तब हमारा यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि हम जनता को

शास्त्र की बातें बताएं । शास्त्रों में राजा की बड़ी महिमा बताई गई है । यदि कोई राजा बनता है, तो वह अपने पूर्वसंचित पुण्यों से बनता है । हम लोग कर्म और जन्मान्तरवाद में विश्वास करते हैं । इसलिए हम राजा के विरुद्ध किए गए विद्रोह आदि को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते । जब तक राजा के कर्म अच्छे हैं, तब तक लाख चाहे उसे कोई गिरा नहीं सकता । न उसे गिराने की चेष्टा ही करनी चाहिए । जो करेगा वह धर्म-विरुद्ध आचरण करेगा । यों सुधारों के लिए मांग करना कोई बुरी बात नहीं है । हम राजा से यह कह सकते हैं कि राजन् ! हमें कष्ट है, आप हमारी सहायता कीजिए, पर राजा के विरुद्ध विद्रोह करना सर्वथा वर्जित है, और ऐसे लोगों को पतित समझना चाहिए...

जब महामहोपाध्याय षड्दर्शनाचार्य पद्मनाभ शास्त्री ने पतित शब्द कहा, तो जनता में विक्षोभ के लक्षण दिखाई पड़े । पंडित जी अच्छे वक्ता थे, इसलिए वे फौरन मौका देखकर शास्त्रों की आड़ में चले गए । बोले—राजा देवता का अंश है, राजा चन्द्र, सूर्य के वंशधर समझे गए हैं । उनमें अष्टवसु का अंश है । 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' यह कोई आज का सिद्धान्त नहीं है । फिर हमारे राजा तो केवल दिल्लीश्वर नहीं हैं ।

वे बोलते रहे—मैं प्रमाण दे सकता हूं कि वेदों में यह सिद्धान्त मौजूद है कि राजा देवतास्वरूप होते हैं । शतपथ ब्राह्मण में राजा को प्रजापति का दृश्यमान रूप बताया गया है । उसीमें राजसूय के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि राजसूय यज्ञकर्ता दो कारणों से इन्द्र है, एक तो क्षत्रिय होने के नाते, दूसरे यज्ञकर्ता के नाते ।

यहां पंडित जी ने यह बताया कि क्षतात् त्रायतेति क्षत्रियः, इसलिए अंग्रेज़ क्षत्रिय कहे जा सकते हैं । १९११ में जो दिल्ली दरबार हुआ था, वह राजसूय का एक दूसरा रूप था ।

पंडित जी ने और भी कहा—यदि केवल हमारे हिन्दू धर्म में ही यह बात कही गई होती, तो आप कह सकते थे कि यह गलत है । ईसाइयों के पुराने अहमदनामे के अनुसार ईश्वर ही राजाओं को चुनता है, अभिषिक्त करता है और यदि उस राजा ने कोई गलती की तो उसे मारता भी है । इसका साफ मतलब है कि राजा ईश्वर का मध्यस्थ है, उसीके नियमों

से शासन करता है। जापान में मिकाडो सूर्य के पुत्र माने जाते थे। मिस्र में राजा सूर्य देवता के पुत्र माने जाते थे। चीन में भी ऐसे ही विचार थे। सेंट पाल ने यह साफ लिखा था कि प्रत्येक व्यक्ति उच्चतर शक्ति के अधीन राज्य करता है, क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त कोई शक्ति ही नहीं है, जो भी शक्तियां हैं वे ईश्वर की शक्तियां हैं। जो भी इस शक्ति के विरुद्ध प्रतिरोध करता है, वह ईश्वर के नियम का प्रतिरोध करता है।

इसी प्रकार वे एक के बाद एक प्रमाण और सिद्धान्त पेश करते चले गए। वे सचमुच बहुत अच्छे वक्ता थे, और श्रोताओं की नाड़ी पर हाथ रखकर आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

आनन्दकुमार ध्यान से उनका व्याख्यान सुनते जा रहे थे। सुनते-सुनते कई बार उनके तेवर चढ़ जाते थे, क्योंकि उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि इतनी विद्वत्ता का इस प्रकार दुरुपयोग हो रहा है। वे भीतर ही भीतर कुढ़कर रह जाते थे।

श्यामा ने यह बात ताड़ ली, और वह आनन्दकुमार से और भी सटकर बैठती हुई बोली—चाचा जी, पंडित जी को इस व्याख्यान के लिए कितने रुपये मिलेंगे?

इस प्रश्न को सुनकर पास बैठे हुए दो-एक आदमी आनन्दकुमार के चेहरे की तरफ उत्सुकता के साथ देखने लगे। आनन्दकुमार शोरगुल तथा ऐसी बातों से बचते थे, जिनसे लोगों की दृष्टि उनपर जाए, इसीलिए उन्होंने श्यामा की तरफ विशेष अप्रसन्न होकर देखा।

श्यामा उस निषेधमूलक दृष्टि के सामने उस समय के लिए तो चुप हो गई। पर उसका जी नहीं लग रहा था। एकाएक उसे राजेन्द्र की याद आई तो उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह उसके ही नहीं सारे संसार के साथ विश्वासघात कर रही है। क्या इस सभा में बैठना उसके लिए योग्य और उचित है?

महामहोपाध्याय षड्दर्शनाचार्य ने अब इस बात की आवश्यकता समझी कि केवल शुद्ध सिद्धान्तों और प्रमाणों में न भटककर निकट की बातों पर आया जाए। बोले—यह आप न भूलिए कि यह घोर कलियुग है। आजकल कोई शास्त्रों को नहीं मानता। जिसे देखो वह अपनी ढाई

ईंट की मसज़िद बनाने पर तुला हुआ है। हमारी मनुस्मृति चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि इस संसार में राजा के न रहने से सर्वत्र हाहाकार मचने लगा, इसलिए जगत् के रक्षार्थ ईश्वर ने राजा का निर्माण किया। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठों देवताओं का अंश लेकर राजा उत्पन्न किया गया। आज हमारे सौभाग्य से ब्रिटिश राजा हमारे सम्राट हैं, पर उनके विरुद्ध नारे दिए जा रहे हैं। क्या यह उचित है ? मैं एक शास्त्रज्ञ के नाते यह कहता हूं कि इससे देश का सत्यानाश होगा। क्या आप फिर से मुगलों या पठानों के अधीन होना चाहते हैं, जिन्होंने आपके मन्दिरों को तोड़ा, लोगों को ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाया। अंग्रेज़ों को लगभग डेढ़ सौ वर्ष राज्य करते हो गया, पर क्या कभी उन्होंने आपके धर्म में हस्तक्षेप किया, आपकी बहू-बेटियां भगाई ?…

शास्त्री जी ने यहां पहुंचकर जान लिया कि अब जनता में कुछ दिलचस्पी पैदा हो रही है। उनकी आंखों में एक नई चमक आई और अब उन्होंने महमूद गज़नवी से लेकर औरंगज़ेब तक सबका बखान कर डाला। जनता बिल्कुल शान्त होकर उनकी बात सुनने लगी। उन दिनों लाउडस्पीकर नहीं था, पर पंडित जी की आवाज़ इतनी मंजी हुई और सुरीली थी कि वह दूर-दूर तक पहुंचती थी। मंच पर बैठे हुए राजा तथा अन्य विशिष्ट लोग फूले नहीं समाते थे। उन सबके चेहरों पर मानो यही लिखा हुआ था, अब मैदान मार लिया।

पंडित जी कुछ देर और बोलकर बैठ गए। यों और भी कई पंडित इस दंगल में भाग लेकर अपना नाम उजागर करना चाहते थे, पर आयोजक ताव खाए हुए थे। वे समझ रहे थे कि दिग्विजय किया जा चुका है। इसलिए उन्होंने पद्मनाभ शास्त्री के कान में कुछ कहा। शास्त्री जी शास्त्रार्थों के अखाड़े के पुराने अखाड़िया थे, वे ताल-सी ठोककर खड़े हो गए और जनता को सम्बोधित करते हुए बोले—मैंने जो कुछ कहा, वह शास्त्रों के अनुसार कहा गया, फिर भी यदि कोई व्यक्ति विरोध में कुछ कहना चाहे, तो आयोजक उसका स्वागत करेंगे।—कहकर पंडित जी उद्धत ढंग से 'युद्धं देहि' मुद्रा में जनता के सामने छाती फैलाकर खड़े हो गए।

यत्र-तत्र दस-बीस गांधी टोपी वाले भी उस सभा में मौजूद थे। जहां-जहां ऐसे लोग थे, उनके पड़ौसी उनकी तरफ देखने लगे। पर पद्मनाभ शास्त्री का धाराप्रवाह खंडन-मंडनपूर्ण व्याख्यान, फिर राजाओं और बड़े-बड़े पंडितों की उपस्थिति! उनमें से किसीने पर तक नहीं मारा। कइयों ने तो पड़ोसियों से बचने के लिए अपनी गांधी टोपियां उतारकर जेब में रख लीं। दो राजा मूंछ वाले थे, वे यह परिस्थिति देखकर मूंछों पर ताव देने लगे, यद्यपि उनकी तोंदों के साथ मूंछों पर ताव देने का कार्य बिलकुल शोभा नहीं देता था। पर मूंछों पर ताव देना जारी रहा मानो उन्होंने कोई भारी करतब कर दिखाया हो।

श्यामा ने आनन्दकुमार से धीरे से कहा—चाचा जी!...

आनन्दकुमार ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुप बैठे रहे। यहां तक कि उन्होंने पलक मारना भी बन्द कर दिया।

श्यामा ने फिर कहा—चाचा जी!...

मानो इसीकी कसर थी। आनन्दकुमार उठ खड़े हुए। जनता ने उनकी फ्रेंचकट दाढ़ी, सौम्य चेहरा, चौड़ा माथा देखा, पर किसीको याद नहीं आया कि कभी किसीने उनको देखा है। आनन्दकुमार के खड़े होते ही जनता जो कुछ अशान्त हो चली थी, एकदम शान्त हो गई। राजाओं ने मूंछों पर ताव देना बन्द कर दिया और एक-दूसरे को देखने लगे। पद्मनाभ शास्त्री ने आनन्दकुमार को इस प्रकार से देखा जैसे एक शेर दूसरे शेर को देखता है।

जनता में से किसीने एकाएक कहा—महात्मा गांधी की जय!

जैसे लोग बड़ी देर से सांस रोके हुए थे, अब उन्हें मौका मिला। लोग बार-बार गगन-भेदी स्वर में महात्मा गांधी की जय, भारतमाता की जय, वन्दे मातरम् के नारे लगाने लगे। जनता जब दो-चार बार नारे लगा चुकी, तो वह स्वयं चुप हो गई। लोग चाहते थे कि दंगल हो और वे आनन्दकुमार का भाषण सुनें। इसलिए जय का नारा बन्द हो गया।

आनन्दकुमार यंत्रचालित की तरह मंच की ओर बढ़े और जब मंच पर पहुंच गए, तो उन्होंने कहा—भाइयो, मुझे केवल दो शब्द कहना

है। मैं यह पसन्द नहीं करता कि राजनीति में धर्मशास्त्र को खींचा जाए। पंडित जी ने जो बातें कहीं, वे सभी एकतरफा हैं। शान्ति पर्व में यह साफ लिखा है कि पहले न तो राज्य था न राजा, दंड था न दांडिक, धर्म से ही प्रजा परस्पर की रक्षा करती थी। बाद को चलकर राजा की उत्पत्ति हुई। हमारे शास्त्रों में यह भी स्पष्ट लिखा गया है कि दंड सब प्रजाओं का शासन करता है, दण्ड ही सबकी रक्षा करता है, दण्ड ही सोए हुए लोगों को जगाता है, इसलिए ज्ञानी पुरुष दंड को ही धर्म कहते हैं। यदि विचारपूर्वक दंड दिया जाए, तो उससे प्रजा प्रसन्न होती है, किन्तु बिना विचार किए दंड देने पर सबका नाश होता है। शास्त्र और भी कहते हैं कि सारा संसार दंड के अधीन है। शुद्ध रूप से साधु मनुष्य विरला ही होता है। दंड के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि दंड ही वास्तव में राजा है, पुरुष है, नेता है, शासक है और वही चारों आश्रमों के शासन का प्रतिभू है। यह भी लिखा गया है कि दंड ही सर्वभूत का गोप्ता यानी रक्षक है। इस प्रकार से दंड राजा से ऊपर है। हमारे नीतिशास्त्रों में यह स्पष्ट कहा गया है कि यदि दंड का अपप्रयोग हुआ, तो वह राजा के लिए घातक होता है। मनु भी कहते हैं कि दंड धर्मभ्रष्ट राजा को सबान्धव नष्ट कर देता है।

आनन्दकुमार ने इसी प्रकार और भी कई प्रमाण दिए। फिर वे बोले—साधारण बात तो यह है कि राजा ही क्यों सभी विभूतिमान सत्त्व में ईश्वर का प्रकाश है? गीता का यही कथन है। हमारे अवतारों पर आइए, तो राम ने रावण का संहार किया, यद्यपि वह राजा था। इसी प्रकार कृष्ण ने कंस और शिशुपाल का वध किया और कौरवों का नाश करवाया। कंस, शिशुपाल, दुर्योधन सब राजा ही थे।

आनन्दकुमार इतना ही कहने के लिए खड़े हुए थे, पर अब वे जनता के हाथ में थे। जनता ने उनके हरएक उपसंहार का तालियां बजाकर समर्थन किया। नतीजा यह हुआ कि आनन्दकुमार कहते गए—जलियानवाला में दंड का अपप्रयोग हुआ है, इसलिए महात्मा गांधी ने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। मैं समझता हूं कि उन्होंने बिल्कुल शास्त्रीय ढंग से काम किया। वे अवतार हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता,

पर उन्होंने एक बहुत अच्छा काम किया है, इसलिए किराये के टट्टू तथा असमर्थ लोगों के कहने से कुछ नहीं आता-जाता। ऐसे लोग जो शास्त्रज्ञ बनकर ब्रिटिश सम्राट को ईश्वर प्रमाणित करने पर तुले हुए हैं, मैं उनसे कहता हूं कि वे झूठे हैं, बेईमान हैं, वे नीच हैं। ऐसे लोगों को पंडित कहना पंडित शब्द का अपमान है। ये लोग तो उन बाजे वालों की तरह हैं, जो पैसा देने पर गमी या खुशी किसी भी मौके पर आकर कोई भी धुन बजा सकते हैं। मैं कभी इन झगड़ों में नहीं पड़ता, पर शास्त्रों का यह दुरुपयोग देखा नहीं गया, इसलिए मैंने ये थोड़े-से शब्द कह दिए।

कहकर आनन्दकुमार ने भाषण समाप्त कर दिया।

श्यामा इस बीच में आनन्दकुमार के पास आ गई थी और दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर मंच से अपने आसनों की तरफ चले। पास के एक आदमी ने श्यामा से आनन्दकुमार का नाम पूछ लिया। और फिर गगन-भेदी स्वर में आनन्दकुमार की जय का नारा लगने लगा। हज़ारों लोग एकसाथ मंच की ओर बढ़े। राजा तथा अन्य लोग मौका देखकर भाग निकले। पद्मनाभ शास्त्री पर दस-बीस धौल पड़ गए। खैरियत यह रही कि भीड़ इस समय मंच पर रखे हुए पानदान तथा अन्य कीमती चीज़ों को हथियाने में लग गई, नहीं तो पंडित जी की आज पता नहीं क्या गत बनती। एक मनचले ने मंच पर लगा हुआ चांदी का मढ़ा एक बांस खींच लिया। खास शामियाना गिर पड़ा और सभा भयंकर भगदड़ में समाप्त हुई।

१२

जब आनन्दकुमार घर पहुंचे, तो रूपवती खड़ी-खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसको इसी बीच में सारी बातों का पता लग चुका था। सच तो यह है कि राजाओं की सभा भंग होने की खबर सारे शहर में फैल चुकी थी। ऐसी खबरें उन दिनों आग की तरह फैल जाती थीं।

रूपवती इसपर मन ही मन श्यामा से असन्तुष्ट हो चुकी थी। वह कुछ ऐसा सोच रही थी कि श्यामा ने आनन्दकुमार को भड़काया होगा, जिसका परिणाम पता नहीं क्या हो। पर जब उसने आनन्दकुमार का चेहरा खिला हुआ पाया, ऐसा खिला हुआ जैसा शायद वर्षों से न देखा गया हो, तो वह भारी दुविधा में पड़ गई और उसने मन ही मन श्यामा के लिए जो तिरस्कार-भरे शब्द प्रस्तुत कर रखे थे, उन्हें उसे बाहर निकालने का अवसर नहीं मिला।

सच तो यह है कि वह चाहती थी कि आनन्दकुमार पुस्तकों के संसार के बाहर भी दिलचस्पी लें। वे कोई इतने अधेड़ या बूढ़े नहीं हो गए थे कि कभी हंसें भी नहीं, क्रोध में न आएं, जोश न दिखाएं। पर वर्षों से वे एक ग्रीक दार्शनिक बल्कि ग्रीक प्रस्तर मूर्ति की तरह जीवन व्यतीत करते थे, जिसमें पढ़ना-लिखना ही एकमात्र कार्य और पुरुषार्थ था। वे जब देखो तब पुस्तकों में ही डूबे रहते थे। उनके लिए अव्वल तो उत्साह के कोई क्षण होते ही नहीं थे या होते थे, तो वे क्षण तब होते थे जब कि कोई नई पुस्तक उनकी मेज़ पर आती थी। यदि पुस्तक-कीट शब्द किसीपर लागू हो सकता है, तो उनपर अवश्य लागू हो सकता है। पुस्तक-कीट सो भी मोटी-मोटी पुस्तकों के कीट।

यह स्पष्ट था कि आज उन्होंने किसी अनास्वादितपूर्व रस का स्वाद

पा लिया था। यह उनके उद्भासित ज्योतिविलसित चेहरे से स्पष्ट था।

चाय-पानी के बाद आनन्दकुमार ने स्वयं ही मानो विषय छेड़ते हुए कहा—मुझे पता नहीं था कि इस प्रकार ज्ञान के नाम पर अज्ञान का बोलबाला है, और लोग ज्ञान के ठेकेदार बनते हुए अज्ञान की उपासना को प्रोत्साहन देते हैं···

रूपवती कुछ निवेदन करना चाहती थी, पर आनदकुमार की उद्दीप्त वाक्यधारा के सामने उसे कुछ कहना उचित नहीं जान पड़ा। आनन्दकुमार कहते गए—मुझे यह बात सबसे बुरी लगी कि हमारे प्राचीन शास्त्रों के नाम पर विदेशी शासन को चिरस्थायी बनाने का षड्यंत्र चालू है। अंग्रेज़ों के लिए अपना राज्य कायम रखना स्वाभाविक है। उनके लिए यह जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। उनके देश में बल्कि सारे यूरोप में इस समय रहन-सहन का जो ऊंचा स्तर बना हुआ है, वह साम्राज्य के बिना नहीं टिक सकता, इसलिए उनके द्वारा भारतीयों की स्वराज्य-सम्बन्धी मांग का प्रतिरोध और महात्मा जी का विरोध तो समझ में आता है पर ये प्राचीन संस्कृति के ठेकेदार काशी के पंडित दो-दो टके पर बिककर जनता को पथभ्रष्ट करें, यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे राजनीति से कोई मतलब नहीं, पर मैं यह कदापि नहीं देख सकता कि हमारी सभ्यता और संस्कृति के नाम पर हमारा हनन हो और हमें गलत रास्ते पर ले जाया जाए।

श्यामा बीच में बोल पड़ी—चाचा जी को क्या कहते हैं षड्दर्शनाचार्य और महामहोपाध्याय की बातों पर ताव आ गया···

रूपवती ने श्यामा की बातों को अनसुनी करके कहा—आप कहते हैं कि राजनीति से आपका मतलब नहीं है, पर आपने आज जो कुछ किया, जिस प्रकार से आपके कारण उनकी सभा वरिबंड हो गई और उनके आदमी पिटते-पिटते बचे, इससे आप तो अनायास ही राजनैतिक भंवर के बीच में आ गए। क्या पता आपके पीछे-पीछे पुलिस भी आ रही हो।—कहकर रूपवती ने सचमुच खुले हुए दरवाज़े की तरफ देखा।

आनन्दकुमार मानो इस पहलू के लिए तैयार ही थे, बोले—मैं क्या करूं? मैं राजनीति में पड़ना नहीं चाहता। मैं तो केवल सत्य और ज्ञान का पुजारी हूं। यह तो मुझसे नहीं हो सकता कि मेरे सामने ज्ञान के साथ

अत्याचार हो और मैं खड़ा-खड़ा उदासीन होकर टुकुर-टुकुर देखता रहूं। आज मुझे यह बात एकाएक समझ में आई और इसके लिए हम इस युग के उन महात्मा के परम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारी आंखें खोल दीं और यह समझा दिया कि सत्य और ज्ञान जब तक पुस्तकों में बंद रहते हैं, तब तक दो कौड़ी के हैं, केवल जड़ पदार्थ हैं, पर जब उनका सम्पर्क जनता से कराया जाता है, तो उनमें इतनी शक्ति पैदा होती है कि वे पहाड़ों को भी ढेलों की तरह इधर से उधर खिसका सकते हैं, समुद्रों को पाट सकते हैं और दूरतम स्थित ग्रहों तक पर अपना अधिकार स्थापित कर सकते हैं। विज्ञान और क्या है ? ज्ञान का ही वह क्रियाशील रूप है जो मनुष्य के हाथों में पड़कर प्रकृति तक को बदलने की सामर्थ्य रखता है···

यह कहकर आनन्दकुमार ने एक बार खिड़की के बाहर दूर अन्तरिक्ष की ओर देखा, फिर बोले—रूप ! तुम जानती हो आज मुझे क्या अनुभव हो रहा है ? अब तक मैं ज्ञान-समुद्र के किनारे खड़ा-खड़ा पत्थरों और रोरियों को बीन रहा था। उस बीनने में आनन्द है, कुछ उत्साह भी है, पर आज तो मैंने ऐसे संसार का पता पा लिया, जिसमें ज्ञान ज्ञान के लिए नहीं है, बल्कि ज्ञान अज्ञान के नाश के लिए है। अब तक मेरे निकट ज्ञान एक स्वतःउद्भासित आलोक-स्तम्भ था, जो आलोकपुंज होते हुए भी निष्क्रिय है पर अब मैं ज्ञान को एक ऐसे गतिशील, अग्रगतिशील सूर्य के रूप में देखता हूं, जो निरन्तर अज्ञान का पीछा कर रहा है और जो यह प्रण कर चुका है कि वह संसार से अज्ञान का नामोनिशान मिटाकर ही दम लेगा। और सुनो रूप ! मुझपर यह भी सत्य खुल गया है कि महात्मा गांधी इस ज्ञान-महायज्ञ के ऋत्विक् और पुरोहित हैं। हम सबका धर्म यह है कि उनका अनुसरण करें, उनका अनुगमन करें, उनके काम में हाथ बटाएं, जहां उनका पसीना गिरे, वहां हम अपना खून बहाएं। रही पुलिस, अदालत, जेल, जिनकी बात तुम कह रही हो, इनकी मैं बिल्कुल परवाह नहीं करता। मैं न तो राजनीति में हूं और न होना चाहूंगा, पर सत्य का प्रचार करने के लिए यदि मुझे जेल की हवा खानी पड़ी तो मैं इसके लिए भी तैयार हूं। तुम्हें तो मालूम है कि सुकरात ने कोई राजनीति नहीं की

थी, पर वे सत्य के प्रचारक थे, इसलिए उन्हें विष का प्याला पीना पड़ा। इसी तरह ब्रूनो जो ज़िन्दा जलाए गए, उन्होंने कौन-सी राजनीति अपनाई थी ? गैलीलियो जेल में ठूंसा गया, उस बेचारे को तो शायद यह भी पता न हो कि उन दिनों देश में किसका राज्य चल रहा है। उसने तो केवल इतना ही कहा था कि पृथ्वी घूमती है। इसपर उसे धर्म-सम्राट पोप ने जेल भेज दिया।

आनन्दकुमार जोश के मारे तमतमा रहे थे, वे बोलते गए—मैं तो श्यामा के कहने पर उस सभा में चला गया। मुझे न तो कुछ लेना था न देना। पर मिथ्या को मैं कब तक सहन करता ? सुनते-सुनते जी पक गया। तबियत जाने कैसी करने लगी। मैं उठ खड़ा हुआ और जो कुछ मैं जानता था, उसे मैंने जनता के सामने रख दिया। अब इसपर मुझे जेल भेज दिया जाए या जो कुछ भी हो, उसके लिए मैं तैयार हूं। सच तो यह है कि आज मैं पहली बार सत्य के सेवक के रूप में दीक्षित हुआ। अब तक सत्य में मेरे लिए कोई खतरा नहीं था, पर आज सत्य को जिस रूप में मैंने सामने रखा, उससे मेरे लिए खतरा पैदा हो गया है। अब तक जिस सत्य की मैं पूजा करता था, वह एक प्राणहीन मूर्ति थी, आज उसमें प्राण-प्रतिष्ठा हुई है क्योंकि उसकी नसों में खतरे का लाल-लाल खून बहने लगा है। रूप, आज मुझे कोई डर नहीं है क्योंकि मैंने उस रहस्य को जान लिया है, जिसे जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता···

रूपवती खुश होकर बोली—मुझे तो यही भय था कि कहीं इस चंचला बेटी ने आपको ऐसे रास्ते में न लगा दिया हो, जो आपके लिए बाद को अरुचिकर प्रमाणित हो।

आनन्दकुमार हंसते हुए बोले—तुमसे क्या छिपाना, श्यामा ने मुझे अवश्य प्रोत्साहन दिया। मेरे अन्दर ज्ञान की धारा उबल रही थी, उसे रास्ता नहीं मिल रहा था, वह पथराती जा रही थी। इसने एक उंगली से थोड़ी मिट्टी कुरेद दी, बस वहीं से धारा को जगह मिल गई। वह फूट निकली और आज मैं बहकर काफी आगे निकल चुका हूं। बस डर यही है कि कहीं वह तुम्हें तथा मेरी इस शान्तिपूर्ण गृहस्थी को साथ में न बहा ले जाए। हा हा हा हा···

सुनकर रूपवती को जैसे कुछ हो गया, वह अजीब ढंग से हंसी, फिर उसने दौड़कर आनन्दकुमार के चरणों में मस्तक रख दिया। आनन्दकुमार ने जल्दी से उसे उठाकर कुर्सी पर बैठा दिया। वह बोली—स्वामी, आप मेरे लिए कुछ भी चिन्ता न करें। आपके सुख में ही मेरा सुख है। यह तो बड़े ही सौभाग्य की बात है कि आप जिस मार्ग को अपना रहे हैं, वह आज सारे भारत का मार्ग है। मुझे विश्वास है कि हम सबका इससे कल्याण होगा···

आनन्दकुमार कुछ नहीं बोले, पर उनके चेहरे से यह स्पष्ट था कि जो सुख उन्हें आज मिल रहा है, उसकी तुलना में पहले की इकरस शान्ति कुछ भी नहीं थी।

आनन्दकुमार ने कहा—तुम यह न समझना कि इस बच्ची के कारण मैं डिग गया। नहीं। जब कोई अच्छी या बुरी बात होती है, तब कोई न कोई उपलक्ष्य होता ही है। उपलक्ष्य छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। अर्जुन को राह में लाने के लिए युगावतार कृष्ण उपलक्ष्य बने थे, पर महर्षि वाल्मीकि क्रौंच के जोड़े को देखकर ही अपने पथ का सुराग पा गए थे। इसी प्रकार श्यामा बेटी मेरे लिए उपलक्ष्य बनी है। पर असली बात यह है कि यह युग की आत्मा है, जो मेरे ऐसे निकम्मे ज्ञानविलासी व्यक्ति को गद्दों और तकियों के बीच से खींच लाई है। महात्मा गांधी इस नवीन युग के प्रतीक हैं। उनमें युगों की भारतीय साधना और संस्कृति मूर्त हुई है। वे इस युग के नायक हैं। जैसे मेरे लिए यह बच्ची उपलक्ष्य बनी, वैसे ही महात्मा जी करोड़ों भारतवासियों के लिए उपलक्ष्य हैं। असली बात तो यह है कि अब युग की मीनार को ऊंचे उठना है। हम सब उसकी ईंटें और गारा हैं। कोई बड़ी ईंट है, कोई छोटी। कोई चौखट है, कोई खिड़की है। गांधी जी सबसे बड़े राज हैं। बस इसी तरह युग आगे चलेगा। जब मृत्यु गांधी जी के हाथ से कन्नी छीन लेगी, तो और कोई उस कन्नी को लेकर भारत को ऊपर उठाएगा···

आनन्दकुमार इसी ढंग से बहुत-सी बातें कहते गए।

आज तो वे एक पैगम्बर की तरह हो रहे थे। जो भी बात वे कह रहे थे, वह अद्भुत और सुन्दर होती थी मानो वे आज एक ऐसे रेडियो

सेट बन गए हों, जिसका सम्बन्ध किसी बहुत बड़े स्टेशन से हो गया हो। आज उनका ज्ञान अपना पथराया हुआ पुस्तकीय रूप छोड़कर सरल, सहज रूप में दोनों किनारों में हरियाली बिखेरता हुआ, प्यासी ज़मीनों की प्यास बुझाता हुआ, रूपवती और श्यामा की अब तक बंद पड़ी हृदय की नालियों को जल से प्लावित करता हुआ, फुदकता, इठलाता हुआ एक नदी की तरह अपनी लहरों से अठखेलियां करता हुआ चला जा रहा था।

रूपवती को ऐसा मालूम हो रहा था कि आज पहली बार उसने सामने बैठे हुए इस व्यक्ति को जाना है। अब तक जिसे वह जानती थी, वह बहुत अच्छा था, प्रातःकाल उठते हुए सूर्य और रात को चमकते हुए चांद और सितारों की तरह सुपरिचित और घरेलू था, पर अब उसके सामने जो बोल रहा था, वह तो स्वयं जीवन-देवता था।

नहीं, देवता नहीं, वह तो बहुत छोटी बात है। यह तो कोई ऐसी महान हस्ती थी, जिसकी एक-एक बात में क्रान्ति की ज्वाला भरी हुई थी, पर यह ज्वाला जलाती नहीं थी, फफोले नहीं उगाती थी, बल्कि पुचकारती और दुलराती थी। शब्दों में संगीत की तरह माधुर्य था, पर वे बुद्धि को थपकियां देकर सुलाते नहीं थे जैसा कि संगीत का स्वभाव है, बल्कि वे चेतना के ऐसे तन्तुओं को जागरूक और चंचल बनाकर क्रियाशील कर देते थे, जिससे सारे मन और शरीर में क्रान्तिकारी प्रक्रिया जारी हो जाती थी।

रूपवती की आंखों से आंसू जारी हो गए थे, पर न तो आनन्दकुमार उन आंसुओं को देख पाए थे और न श्यामा। श्यामा रो नहीं रही थी, शायद वह आनन्दकुमार की बातों के शाब्दिक अर्थ को समझ भी नहीं रही थी, पर जाने किस प्रक्रिया से, शायद शब्द-संगीत से या आत्मा से आत्मा के आदान-प्रदान से वह बराबर उस उदात्त लोक में बनी रही, जहां आनन्दकुमार थे।

वह सुनती जाती थी और उसकी आंखों के सामने जेल की एक बैरक बार-बार आ रही थी, एक चेहरा बार-बार झांक रहा था, जो शायद यही कह रहा था, श्यामा क्या, देर है? तुम आती क्यों नहीं? आओ, आ—ओ, आऽआ—ओ...

श्यामा जाने के लिए व्याकुल थी, पर कोई ले भी तो जाए।

—ठहरो, देर नहीं है। मैं आऊंगी, अवश्य आऊंगी। आऊंगी नहीं तो जाऊंगी कहां ?

आनन्दकुमार कह रहे थे—मैं तो यह विश्वास करता हूं कि भारत पर जब-जब विपत्ति आई, तब-तब उसे उस विपत्ति से उबारने के लिए एक महापुरुष का जन्म हुआ। बुद्ध इसी प्रकार आए, कबीर आए, चैतन्य आए, नानक आए, राममोहन आए, तिलक आए, अब महात्मा गांधी का युग है। इनके अलावा छोटे-मोटे महापुरुष तो आते ही रहे। भारत में अन्य वस्तुओं का अकाल भले ही रहा हो, पर उसके सहस्रों वर्षों के इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ कि उसे किसी महापुरुष की आवश्यकता रही हो, और वह उत्पन्न न हुआ हो। क्या यह बहुत बड़ी बात नहीं है ?···

१३

जब स्मिथ को यह खबर लगी कि राजाओं और पण्डितों की वह सभा इस प्रकार भंग हो गई, तब उसे बहुत ही क्रोध आया। फौरन जानसन बुलाया गया और स्मिथ ने पूछा—यह आनन्दकुमार कौन है?

जानसन बोला—आज सवेरे तक मुझे मालूम नहीं था कि यह आनन्दकुमार कौन है, पर जब सभा भंग होने की बात सुनी तो मैंने पता लगाया। सुनने में आया कि यह श्रीमती ऐनीबेसेण्ट से किसी प्रकार सम्बद्ध था, पर इससे पहले इसने राजनीति में कभी भाग तो नहीं लिया…

स्मिथ ने तेवर चढ़ाकर कहा—ओह, ऐनीबेसेण्ट? वह मुसम्मात भारत में बहुत-से लोगों का दिमाग खराब कर गई। अब यह बताइए कि आनन्दकुमार से कैसे निबटा जाए?

जानसन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, क्योंकि वह जानता था कि स्मिथ ने यह प्रश्न उससे नहीं बल्कि अपने से पूछा था। जानसन ने केवल इतना ही कहा—आप जैसा हुक्म देंगे वैसा ही किया जाएगा…

स्मिथ अभी कुछ कह नहीं पाया था कि चपरासी ने आकर बताया कि दो महाराजा आए हैं। स्मिथ ने जानसन के साथ-साथ उनको भी बुलाया था इसलिए वे फौरन ही भीतर बुलाए गए।

ये दो महाराजा वे ही थे जो पंडितों वाली सभा में मंच पर बड़े ठाट-बाट के साथ बैठे हुए थे और मूंछें टे रहे थे। जब अन्त में भगदड़ पड़ी तो इन्हींको भागने का रास्ता नहीं मिल रहा था। महाराजाओं ने स्मिथ और जानसन दोनों को सलाम किया और फिर आज्ञा पाकर बैठ गए। स्मिथ ने इन दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा—आप लोग तो सभा में मौजूद थे न?

वयोवृद्ध महाराजा ने दोनों की तरफ से कहा—जी हां, हम लोग मौजूद थे, हम लोग ही तो उसके उद्योक्ता थे।—कहकर उसने कुछ डरते-डरते हंसते हुए कहा—आप तो जानते ही हैं कि हम लोगों ने ही इस सभा का आयोजन किया था और पंडितों को भी हम ही लोगों ने बुलाया था···

वह कहना चाहता था कि इस सभा के लिए सारा खर्च भी हम लोगों ने ही बर्दाश्त किया था, पर उसने स्मिथ के चेहरे पर कोई ऐसी बात देखी, जिससे वह इस बात को कहते-कहते रह गया।

स्मिथ ने कुछ रुखाई के साथ कहा—पर परिणाम क्या हुआ ? मैं तो समझता हूं कि यह सभा न होती तो कहीं अच्छा रहता। मुझे बताया गया है कि इससे तो राजभक्त प्रजा की और भी भद्द पिटी है।

अधेड़ महाराजा ने दोषी चेहरे से युवक महाराजा की ओर देखा, फिर बोला—सारे काम ढंग से चल रहे थे और जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा था, पर एक लड़की ने सारा बना-बनाया काम बिगाड़ दिया।—स्मिथ इस बीच में खड़ा होकर टहलने लगा, वह ठिठककर खड़ा हो गया, कौतूहल के साथ बोला—लड़की कौन ? मैंने तो किसी लड़की की बात नहीं सुनी।

वयोवृद्ध महाराजा ने यह समझा कि उसने कोई तीर मारा है, बोला—आनन्दकुमार के साथ उसकी लड़की थी, उसीने आनन्दकुमार को तैश दिलाकर व्याख्यान दिलवाया। नहीं तो आनन्दकुमार के सम्बन्ध में लोगों से यह पता लगा है कि वह कभी झगड़ों में पड़ने वाला व्यक्ति नहीं रहा। लोग तो कहते हैं, कि वह पुस्तक-कीट है, और दुनिया से उसे कभी कोई सरोकार नहीं रहा। कहते हैं उसके यहां बहुत अच्छा पुस्तकालय है।

स्मिथ जानसन की ओर एक कदम बढ़ाकर बोला—क्या आप इस लड़की को जानते हैं ?

जानसन बोला—नहीं तो, मैंने लड़की के विषय में कुछ नहीं सुना है।

तब युवक महाराजा ने मानो जानसन को सहायता देने और अपनी राजभक्ति दिखाने के लिए कहा—यह तो मेरी आंखों के सामने की बात है। वह लड़की बार-बार उस व्यक्ति से कुछ कह रही थी, उसी समय हमें सन्देह हो गया था कि यह कोई गुल खिलाएगी। मेरा यह विचार

है कि जो वह लड़की न होती, तो आनन्दकुमार किसी भी तरह व्याख्यान देने के झमेले में नहीं पड़ता।

वयोवृद्ध महाराजा ने भी इसीका समर्थन किया। तब जानसन ने पूछा—क्या उसका नाम मालूम हुआ?

वयोवृद्ध राजा ने कहा—हां, उसका नाम उमा है।

युवक राजा उसकी बात का संशोधन करते हुए बोला—उमा नहीं, श्यामा।

जानसन को जैसे कुछ रोशनी-सी दिखाई पड़ी। बोला—अब समझ में आया। यह श्यामा आनन्दकुमार की बेटी नहीं है, बल्कि रायबहादुर बंशीधर की बेटी है और यह एक बार जेल भी हो आई है।

स्मिथ को सोचने के लिए खुराक मिल गई। वह फिर टहलने लगा, कुछ देर टहलकर बोला—इसके माने ये हुए कि एक मामूली लड़की के सामने आपके सारे पण्डित और, माफ कीजिए, आप लोग बेकार साबित हुए। यह भी एक अजीब बात मालूम हुई कि रायबहादुर की बेटी जेल हो आई है और वह आनन्दकुमार ऐसे लोगों को राजद्रोही बना रही है। मैं तो यही कहूंगा कि मेरी समझ में यह नहीं आता कि अब किसपर विश्वास किया जाए और किसपर नहीं। रायसाहब राजकिशोर का लड़का पहले से ही जेल में मौजूद है···और अब यह···

जानसन ने नई रोशनी डालने की इच्छा से कहा—श्यामा और रायसाहब के लड़के राजेन्द्र की शादी करीब-करीब तै हो चुकी थी।

स्मिथ बोला—यह और भी रहस्यमय है। सभी बातें हमारे विरुद्ध पड़ रही हैं। रायसाहबों और रायबहादुरों के घरों के अन्दर जब राज-द्रोह का बीज पनप रहा है, तो फिर हम किसका विश्वास करें?

वयोवृद्ध महाराजा ने कहा—इसमें सन्देह नहीं कि समय बहुत बुरा आ गया है। हम जो भी बात करते हैं, वह खाली जाती है और एक जगह पर जाकर हमारी पराजय हो जाती है। यदि गांधी राजनीतिक नेता-मात्र होता, तो हम उससे पेश पा सकते थे, पर जनता की आंखों में तो वह अवतार है। काशी के बहुत-से पण्डितों ने यह राय दी कि गांधी अवतार नहीं हो सकते, पर जनता इस बात को सुनने के लिए

तैयार नहीं। जब सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय ऐसे लोग गांधी को मानते हैं और जवाहरलाल ऐसे युवक उसके कहने पर अपने जीवन की कायापलट कर रहे हैं, तो इन पण्डितों के कहने का कोई असर नहीं पड़ता। यदि मुझसे कोई पूछे तो मैं यही कहूंगा कि ऐसे सब लोगों को जेल में ठूंस दिया जाए...

स्मिथ बोला—क्या हमने जेलों में भरने में कोई कसर रखी है? ज़िला जेल भर चुकी है। मजबूर होकर हमें केन्द्रीय जेल में भी कैदी भेजने पड़े, पर वहां के अफसर इसका विरोध कर रहे हैं। वे कहते हैं कि इन कैदियों के आने से जेल का अनुशासन नष्ट हो रहा है, और केन्द्रीय जेलों में बड़ी मियाद के कैदी ही रहते हैं, इसलिए उनका बिगड़ना खतरे से खाली नहीं है। मैं तो यही देख रहा हूं कि जेलों को भरने से लोगों का उत्साह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ रहा है।

जानसन बहुत देर से नहीं बोला था। वह समझ रहा था कि इन राजाओं के सामने कुछ न बोलने का अर्थ अपनी इज़्ज़त में बट्टा लगाना है, इसलिए वह बोल पड़ा—मैं समझता हूं कि यह अहिंसा एक ऐसी मक्कारी है, जिसका मुकाबला करना बहुत मुश्किल है। यदि ये लोग तोप-तमंचे से लड़ते, तो हम लोग इन्हें आसानी से दबा देते। अभी हमने जर्मनों को परास्त किया। उनके पास तो अच्छे से अच्छे अस्त्र थे, फिर भी हमारे सामने उन्हें मुंह की खानी पड़ी। पर हम ऐसे लोगों के साथ क्या करें जो इतने कायर हैं कि पुलिस देखते ही लेट जाते हैं, जेलों में खुशी से जाते हैं। मैंने तो यहां तक सुना है कि जब सज़ा समाप्त होने पर उन्हें जेल से रिहा किया जाता है, तो वे जेल के फाटक के बाहर आने से इनकार करते हैं।

वयोवृद्ध महाराजा ने इसका समर्थन करते हुए और कदाचित् अपनी विद्वत्ता दिखलाते हुए कहा—हमारे शास्त्रों में कहीं इस तरह की लड़ाई की बात नहीं लिखी है। महाभारत का इतना बड़ा युद्ध हुआ, रामायण का युद्ध हुआ पर इस प्रकार के युद्ध की बात कहीं सुनी ही नहीं गई। हां, शायरी में सुना जाता था कि 'लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।'

स्मिथ इन बातों को सुनकर खुश नहीं हुआ। बोला—आपके शास्त्र में क्या लिखा है या नहीं लिखा है, इससे इस समय काम नहीं बनता। जेल में भेजने की नीति अभी तक सफल होती नहीं नज़र आती। फिर भी हमें इस कुचक्र से लोहा तो लेना ही है। हम गिरफ्तारी की नीति जारी रखेंगे, पर साथ ही हमें प्रचार भी करना पड़ेगा। महाराजा साहब ! आपके पण्डित कहां तक इस प्रचार में उपयोगी साबित होंगे, यह मैं नहीं जानता। फिर भी उनसे काम तो लेना ही पड़ेगा ! लन्दन में यह तै हुआ है कि प्रिन्स आफ वेल्स भारत में भेजे जाएं और वे भारत का दौरा करें।

दोनों महाराजाओं ने इस नीति की बहुत उच्छ्वसित प्रशंसा की। वयोवृद्ध महाराजा बोला—मैं यह जानता हूं कि भारतनिवासी अनिवार्य रूप से स्वभाव से राजभक्त हैं। यदि उन्हें एक बार राजा या युवराज का दर्शन हो जाए, तो उनके दिमाग से सारा फितूर निकल जाए। फिर तो महात्मा और अवतार की एक नहीं चलेगी, पर इस बात का प्रबन्ध करना चाहिए कि सारी प्रजा को राजदर्शन प्राप्त हों, यह नहीं कि भीतर ही भीतर दस-बीस रायसाहबों और रायबहादुरों से मिलकर ही वे विलायत चले जाएं।

जानसन बीच में बोल पड़ा—यह कैसे हो सकता है ? मैंने तो जब से सुना है कि प्रिन्स आफ वेल्स इस देश में पधारने वाले हैं, और काशी में भी वे पधारेंगे, तब से मुझे रात को नींद नहीं आ रही है। महाराजा साहब ! आपने तो ताव में आकर कह दिया कि सारी प्रजा को उनका दर्शन प्राप्त होना चाहिए, पर हम पुलिस वालों की इससे कितनी ज़िम्मेदारी बढ़ती है, यह आपने नहीं सोचा। यों देखने में अनार्किस्ट आन्दोलन इस समय बन्द है, पर भीतर-भीतर क्या हो रहा है, कौन जाने। लार्ड मेयो एक वहाबी के हाथों अन्दमन में मारे गए थे, यद्यपि आम तौर से यह बात नहीं मालूम, और लार्ड हार्डिङ्ग पर दिल्ली में दिन-दहाड़े बम से हमला हुआ था।

स्मिथ ने कहा—महाराजा साहब जो बात कह रहे हैं, वह अपनी जगह पर ठीक है और मि० जानसन, आप जो बात कह रहे हैं, वह अपनी

जगह पर सही है। हमें काशी में इतना सुन्दर कार्यक्रम बनाना चाहिए कि लाखों की संख्या में लोग समारोह में भाग ले सकें, साथ ही प्रिन्स आफ वेल्स सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित रहें, उनपर किसी तरह की आंच न आने पाए यह भी देखना है।—कहकर स्मिथ राजाओं की ओर देखते हुए बोला—हमें इस समय आपकी सहायता चाहिए। जो कार्यक्रम रखा जाए, उसमें आतिशबाज़ी, गंगा पर नौकाविहार आदि कार्यक्रम इतने शानदार होने चाहिए कि जनता मुग्ध हो जाए।

वयोवृद्ध महाराजा ने कहा—आप निश्चिन्त रहें, हम लोग इन समारोहों को सफल बनाने में कुछ उठा नहीं रखेंगे। इतने राजा और रईस हैं। दस-पांच लाख रुपया खर्च कर देना हमारे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। आप कार्यक्रम बना दें, हम उसे पूर्ण रूप से कार्यान्वित करेंगे।···

महाराजा साहब और भी कुछ कहने जा रहे थे, पर स्मिथ ने बीच ही में टोकते हुए कहा—आप जो कुछ भी खर्च करेंगे, वह इसी देश में रहेगा और उसमें आप ही की भलाई है। युवराज को न तो आपकी आतिशबाज़ी में कोई दिलचस्पी है और न नौका-विहार में। आप शायद जानते होंगे कि यूरोप में समय-समय पर बड़ी-बड़ी नुमाइशें हुआ करती हैं। उन अवसरों पर बहुत कलात्मक आतिशबाज़ी का कार्यक्रम रहता है। रहा नौकाविहार, सो मैं आपकी धार्मिक भावनाओं को कोई ठेस नहीं पहुंचाना चाहता, यूरोप की किसी भी बड़ी नदी को लीजिए, डेन्यूब, राइन, सोन, वोल्गा और सर्वोपरि टेम्स पर जो शानदार नौकाविहार वहां के लार्ड और बड़े लोग करते हैं उसकी तुलना में काशी का बुढ़वा मंगल, जो काशी में नौकाविहार का सबसे सुन्दर मौका होता है, कुछ भी नहीं है।

कहकर स्मिथ पहले की तरह टहलने लगा। वयोवृद्ध महाराजा एक मिनट तक भौंचक्का रह गया, पर फौरन ही संभलकर बोला—आप कार्यक्रम बना दें, हम लोग उसे अच्छी तरह कार्यान्वित करेंगे।

स्मिथ टहलते-टहलते खड़ा हो गया और बोला—नहीं, मैं इतना बड़ा काम किसीके भरोसे छोड़ना नहीं चाहता। सभा में जिस तरह भद्द हुई,

उसे देखकर अब मैं यही उचित समझता हूं कि कार्यक्रम भी हम ही बनाएं और उसे कार्यान्वित भी हम ही करें।—कहकर वह शायद समझ गया कि वह बिना कारण अधिक कड़ाई दिखा रहा है, इसलिए बोला—हम माने केवल सरकारी कर्मचारी नहीं, बल्कि सभी ज़िम्मेदार लोग। मैं चाहता हूं कि इस समारोह-समिति के अध्यक्ष आप ही बनें। जानसन इसके सचिव रहेंगे।

सुनकर वयोवृद्ध महाराजा साहब की बाछें खिल गईं। इस बीच में उसके मन में जो मैल या संशय उत्पन्न हुआ था, वह मानो 'अध्यक्ष' शब्द सुनते ही काफूर हो गया। वह चाटुकारिता के ढंग पर इसका दाम देते हुए बोला—हम, भारतवासी स्वभाव से ही बहुत ढीले-ढाले हैं, इसलिए यह अच्छा ही है कि आप लोग समारोह को सफल करने के काम में हाथ बटाएं।

छोटा महाराजा अब तक केवल एक बार बोला था। वह नम्र तथा अन्य कई कारणों से बड़े महाराजा का यानी अधिक तोपों की सलामी पाने वाले महाराजा का सम्मान करता था, पर उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि इस महान अवसर पर वयोवृद्ध महाराजा को अध्यक्ष बनाया जाए। बोला—महाराजा साहब ठीक कह रहे हैं। मैं तो यह कहूंगा कि इस समारोह-समिति के अध्यक्ष मिस्टर स्मिथ, आप स्वयं बनें, हम लोग तो पीछे-पीछे रहेंगे ही। जिसे आप जहां लगा देंगे, वह वहीं काम करेगा।

स्मिथ समझ गया कि छोटे महाराजा के इस प्रस्ताव के पीछे क्या भावना काम कर रही है। वह मन ही मन हंसा, पर प्रत्यक्ष रूप से बोला—यदि हम या जानसन या ज़िला के सेशन जज मिस्टर कार्टर इस समारोह के अध्यक्ष बनेंगे, तो जनता पर इसका उतना अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए मेरा विचार तो यही है कि आपमें से एक नौकाविहार-समारोह के इन्चार्ज बनें और दूसरे आतशबाज़ी आदि समारोह के इन्चार्ज बनें। आप ही लोगों का नाम अखबारों में जाए, यों अनुशासन की देख-रेख के लिए हम लोग पीछे-पीछे रहेंगे।

स्मिथ ने इन बातों को ऐसे निर्णयात्मक ढंग से कहा कि फिर इसपर

कोई बातचीत नहीं हुई। स्मिथ ने पहले से ही कुछ ब्यौरे तय कर रखे थे। उसने कहा—मैंने समारोहों के लिए एक बजट बनाया है, पर आप लोग यह बताइए कि युवराज के समारोहों में खर्च के लिए कितने रुपये काफी होंगे ?

वयोवृद्ध महाराजा सहसा कुछ उत्तर नहीं दे पाया। वह दूसरे महाराजा का मुंह ताकने लगा। मालूम होता है स्मिथ ने केवल औपचारिक ढंग से ही प्रश्न किया था। उसने अपने प्रश्न का आप ही उत्तर देते हुए कहा—काशी महानगरी की प्रतिष्ठा को देखते हुए तथा आप ऐसे नागरिकों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए मैं समझता हूं कि मोटे तौर पर दस लाख रुपये चाहिए···

वयोवृद्ध राजा ने जो दस लाख रुपये का नाम सुना, तो उसका मुंह सूख गया। गत महायुद्ध में उसने बराबर धन और जन से सरकार की सहायता की थी। उसने न जाने कितने घरों को उजड़वा दिया था। अपनी प्रजा और किसानों से ज़बर्दस्ती वसूली के बावजूद उसे स्वयं भी कई लाख रुपये खर्चने पड़े थे। वह दस लाख के नाम से इस कारण घबराया कि सलामी की तोपों की संख्या को देखते हुए उसे इस रकम में से कम से कम पांच लाख रुपये देने थे, दूसरे महाराजा को भी कुछ नहीं तो दो लाख देना ही पड़ता, बाकी तीन लाख रायबहादुरों, रायसाहबों तथा सरकार के अन्य पिट्ठुओं से अथवा योंही व्यापारी-वर्ग से वसूल करना था।

वयोवृद्ध महाराजा बोला—एक लाख की आतिशबाज़ी बहुत काफी होगी।

उसने ऐसा केवल इस रूप में कहा कि जो डूबता है, वह तिनके का भी सहारा लेता है।

स्मिथ राजाओं की चर्बी निकालकर उससे साम्राज्यवाद का दीया जलाने में पारंगत था, बोला—आतिशबाज़ी में कम से कम ढाई लाख रुपये खर्च होने चाहिए। बाकी और कितनी ही बातें हैं। ब्राह्मणों, मौलवियों की अच्छी खातिरदारी होनी चाहिए। इसके अलावा युवराज के आने की खुशी में भिखमंगों को भी दान मिलना चाहिए। स्कूलों में मिठाई बंटनी चाहिए। बनारस की दोनों जेलों में जशन होना चाहिए, और कैदियों

में मिठाई बांटी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से खर्च हैं। आप दोनों का ही विशेष भरोसा है। आपने महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार की अमूल्य सेवाएं कीं, जिसे हम कभी भूल नहीं सकते, आशा है कि इस मौके पर आप हमें मंझधार में नहीं छोड़ देंगे। हमें आप लोगों पर बड़ा भरोसा है।

स्मिथ द्वारा इस प्रकार भावुकता उभाड़े जाने पर भी उन दोनों महाराजाओं ने विशेष उत्साह नहीं दिखाया। छोटे राजा ने संकटकाल जानकर साहस दिखाते हुए कहा—हम ज़रूर आपकी सहायता करेंगे। पर आपको शायद यह नहीं मालूम कि नाम के हम महाराजा ज़रूर हैं, पर बनारस बैंक और इलाहाबाद बैंक में मेरा सिर बिका हुआ है। महायुद्ध के दिनों में हमने सरकार बहादुर की जो सहायता की, उसीसे हम अभी तक उबर नहीं पाए थे कि गांधी की आंधी चल गई। अब तो किसान हमें लगान नहीं देते। लोग सरकश होते जा रहे हैं। गांवों की हालत बहुत बिगड़ती जा रही है।

बड़े महाराजा ने भी मौका देखकर इसी प्रकार की बातें कीं। पर स्मिथ बिल्कुल नहीं पसीजा। बोला—यदि आप लोग इस अवसर पर आदर्शवादिता नहीं दिखलाएंगे, तब तो दूसरे भी कन्नी काटेंगे। इतना खर्च करने में एक राज़ भी है। वह राज़ यह है कि हम बरगलाए हुए सरल भारतवासियों को यह दिखलाना चाहते हैं कि गांधी ने तो तुमसे केवल एक करोड़ रुपया मांगा है, पर हम एक शहर में ही दस-बारह लाख रुपया समारोहों में लगा देंगे। इसका नैतिक प्रभाव बड़ा ज़बर्दस्त होगा। ······आप लोग केवल यह न देखें कि कितनी रकम जा रही है, बल्कि यह देखें कि उससे कितनी बड़ी नैतिक शक्ति उत्पन्न हो रही है, जिसका प्रभाव भारतीयों पर पड़ेगा। कोई भी राज्य शस्त्र के बल से कायम नहीं रह सकता। राज्य साख और प्रतिष्ठा से कायम रहता है। हम इन समारोहों के द्वारा यह दिखलाना चाहते हैं कि हमारी साख और प्रतिष्ठा पहले की तरह बनी हुई है, लड़ाई के कारण उसमें कुछ बट्टा नहीं लगा है, बल्कि उसमें चार चांद लगे हैं···

अधेड़ महाराजा ने कहा—यह तो सब ठीक है। हम सम्पूर्ण रूप से

आपकी राजनीति के कायल हैं और यह भी मानते हैं कि युवराज एक बार देश में घूम-फिर जाएं, तो गांधी ने जो उपद्रव मचा रखा है, उसकी जड़ें उखड़ जाएंगी। हम इस महायज्ञ में पूर्ण सहयोग देना चाहते हैं, पर जैसा कि महाराजा साहब ने कहा हमारी हालत पतली है। बैंक हमसे मोटा सूद मांगते हैं। आप उनसे हमें उधार दिलवा दें तो हम सेवा के लिए तैयार हैं···

स्मिथ ने कहा—आप इस बात की चिन्ता न करें। सारे काम हो जाएंगे। मैं यही चेष्टा करूंगा कि आप लोगों पर कम से कम बोझ पड़े।

१४

आनन्दकुमार अभी टहलकर आए ही थे कि रूपवती ने कहा—एक बहुत बुरी खबर है।

आनन्दकुमार अब वह आनन्दकुमार नहीं थे। बोले—यही खबर है न कि मेरी गिरफ्तारी का वारण्ट आ चुका है।...

—नहीं, उससे भी खराब खबर है।

—क्या ?

रूपवती ने कहा—आप आज सवेरे ज्योंही टहलने के लिए बाहर गए, त्यों ही एक गोरा अफसर और कई सिपाही आए और वे श्यामा को मोटर पर बिठाकर ले गए। मैंने उस गोरे अफसर से बहुतेरा कहा कि आप श्री आनन्दकुमार के आने तक प्रतीक्षा करें पर वह नहीं माना। तब मैंने श्यामा के पिता को टेलीफोन किया, पर उन्होंने उलटे मुझे जली-कटी सुनाई। आपको बुलाने के लिए साइकिल पर आदमी भी भेजा, पर आप आज शायद कम्पनी बाग नहीं गए थे।

आनन्दकुमार ने कहा—गिरफ्तार तो वह एक बार और भी हो चुकी है, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। रायबहादुर से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ था क्योंकि वे तो पहले ही अपनी लड़की से अलग हो चुके हैं।

फिर भी मुझे परिस्थिति कुछ अच्छी मालूम नहीं हुई, इसलिए मैंने यह सब किया। मैंने उस अफसर से वारण्ट मांगा, पर उसने वारण्ट नहीं दिखाया, वह बदतमीज़ी से बोला, "हम लोग भी गान्डी का चेला है, हम असहयोग करटा है, हम वारण्ट नहीं दिखाटा है..."

—पर यह तो गैर कानूनी बात है।

आनन्दकुमार फौरन मोटर पर बैठकर पुलिस के बड़े दफ्तर के लिए

रवाना हो गए। रूपवती भी साथ में चली। आज वह पति को अकेला नहीं छोड़ना चाहती थी।

पुलिस के बड़े दफ्तर में इस मेज़ से उस मेज़ जाने पर भी यह पता नहीं लगा कि वह गोरा अफसर कौन था और श्यामा कहां है। आनन्दकुमार थोड़े दिनों से यह समझ रहे थे कि ब्रिटिश शासन में बड़ी-बड़ी खराबियां हैं, पर उसमें इतनी अधिक खराबी है, उन्हें इसका परिचय अब मिला। वे झुंझलाहट में सीधे ज़िला मजिस्ट्रेट मिस्टर स्मिथ के पास पहुंचे।

बड़ी देर प्रतीक्षा कराकर उन्हें भेंट करने के लिए बुलाया गया। आनन्दकुमार ने सारी बात बताई और यह जानना चाहा कि श्यामा कहां है। स्मिथ ने सब कुछ सुनकर सुनी-अनसुनी कर दी। बोला—आप वही स्वनामधन्य आनन्दकुमार हैं, जिन्होंने कल पंडितों की सभा में हंगामा करवा दिया?

आनन्दकुमार ने कहा—मैंने हंगामा नहीं करवाया, मैंने तो असत्य का प्रतिवाद-मात्र किया।...

—पर उससे सभा भंग हो गई, और उसके आयोजक पिटते-पिटते बचे। आप नहीं जानते हैं कि आपने ऐसा काम किया, जिसके फलस्वरूप बहुत बड़ी मारकाट और खून-खच्चर भी हो सकता था। सभा के आयोजकों ने शान्ति और संयम से काम लिया नहीं तो आपके उत्तेजक भाषण के कारण कुछ भी हो सकता था। कहीं कुछ हो जाता, तो आप लोग कहते कि जलियानवाला काण्ड हो गया और निहत्थों के साथ अन्याय हुआ इत्यादि-इत्यादि।

स्मिथ की बातें सुनकर अजातशत्रु आनन्दकुमार को भी एक बार क्रोध हो आया। बोले—उस हालत में ज़िम्मेवारी उनकी होती जो जनता में भाड़े के टट्टुओं से सत्य के रूप में असत्य का प्रचार करवाना चाहते थे। मैंने तो केवल उस असत्य का पर्दाफाश किया।

स्मिथ की आंखें सुर्ख हो गईं। वह बोला—आश्चर्य यह है कि आप पढ़े-लिखे होकर ऐसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बात कह रहे हैं। यह तो आप जानते ही होंगे कि सत्य के भी पर्याय होते हैं। कोई सत्य बड़ा होता है,

और कोई छोटा । बड़े सत्य के सामने छोटे सत्य को हमेशा दबना पड़ेगा, दबना चाहिए, और इसीमें सबकी भलाई है ।

स्मिथ अब तक बैठकर बातें कर रहा था, पर अब वह उत्तेजना के कारण उठकर खड़ा हो गया । रूपवती एक क्षण के लिए शंकित हुई कि पता नहीं कि यह गोरा क्या करने जा रहा है । पर अगले ही क्षण स्मिथ ने कहा—क्या भारत के लिए और मैं तो कहूंगा सारे एशिया और अफ्रीका के लिए यह सत्य नहीं है कि हम पाश्चात्य लोग आपके देश में सही अर्थों में आलोक ले आए ? जब ब्रिटिश नहीं आए थे, उस समय के भारत की ओर ज़रा दृष्टि डालिए। हिन्दू मुसलमानों से लड़ रहे थे, मराठे अन्य प्रान्त के लोगों पर ज़ुल्म ढा रहे थे, हिन्दू हिन्दू से लड़ रहे थे, मुसलमान मुसलमान से लड़ रहे थे । न आपका कोई देश था, न कोई देशभक्ति थी । सारा देश टुकड़ों में बंटा हुआ था, किसीसे किसीको आत्मीयता नहीं थी । सही अर्थों में जंगल का कानून लागू था । ऐसे समय में अंग्रेज़ भारत में पधारे, उनके साथ-साथ विश्व का ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य सब आपके पास आया । आज जिस राष्ट्रीयता के नाम पर आप पवित्र ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करना चाहते हैं, क्या वह हम अंग्रेज़ों की देन नहीं है ? क्या मिल, बेन्थम से ही आपको स्वतन्त्रता की धारणा नहीं मिली ? क्या अंग्रेज़ी के ज़रिये से ही वाल्टेयर, रूसो और दिद्रो से आपका परिचय नहीं हुआ ?

आनन्दकुमार स्मिथ के साथ इस प्रकार तर्क करने के लिए तैयार नहीं थे । एक क्षण के लिए वे तिलमिला गए, क्योंकि शत्रु का आक्रमण आकस्मिक था । वे स्वयं अंग्रेज़ों की देन को एक बड़ी हद तक स्वीकार करते थे । उन्होंने अंग्रेज़ी पुस्तकों से ही सारा ज्ञान प्राप्त किया था, वह संसार को अंग्रेज़ी के चश्मे से ही देखने के अभ्यस्त थे, पर इस गोरे ने जिस रूप में यह बात कही, वह उन्हें बिलकुल ही उद्धत लगी ।

बोले—कई बार बुराई से भी भलाई हो जाती है । पर इससे बुराई भलाई नहीं हो जाती । यदि हमें बाहर से इतने भयंकर धक्के नहीं लगते, तो हमें आत्मदर्शन इतनी आसानी से नहीं होता, इतना तो मैं मानता हूं । लेकिन मैं यह नहीं मानता कि सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और कला

के क्षेत्र में हमने यूरोप से ही सीखा। भारत ने ही सारे संसार को संख्या सिखाई, अरबों ने उसे हमसे लिया, और यूरोप ने अरबों से। बुद्ध भारत में ही पैदा हुए थे, कालिदास भारत के ही महाकवि थे, अजन्ता, एलोरा भारत में ही हैं। ताजमहल हमारे देश की ही इमारत है। भारत में राजनीतिक एकता कदाचित् नहीं थी, पर धर्म के नाम पर हम एक थे। सारे भारतीयों के तीर्थ तथा देवी-देवता एक ही थे। जो हिन्दू कन्याकुमारी में मरता था, वह भी गंगा का नाम लेकर ही मरता था। पर यदि आपकी तरह यह भी माना जाए कि ब्रिटिश शासन के कारण ही अखिलभारतीय एकता का राष्ट्रीय अथवा राजनीतिक रूप अस्तित्व में आया, तो भी यह किस तर्क से कहा जा सकता है कि भारत हमेशा के लिए ब्रिटिश के अधीन बना रहे?

स्मिथ ने पहले की तुलना में नरम पड़ते हुए कहा--हम यह कब कहते हैं कि भारत हमेशा पराधीन बना रहे? क्या यह सच नहीं है कि लगभग हर दस साल बाद शासन-सुधार किए जा रहे हैं? मार्ले-मिण्टो शासन-सुधार के बाद अगली किस्त सामने ही है, यदि यह सफल रही तो धीरे-धीरे डोमीनियन स्टेट्स भी दे दिया जाएगा। पता नहीं युवराज क्या कहने जा रहे हैं। आप लोगों को उन्हें मौका देना चाहिए···

आनन्दकुमार ने कहा—यही तो बात है जो हम भारतवासियों को सबसे अधिक नापसन्द है। हम यह नहीं चाहते कि कोई हमपर जज बनकर बैठे, और यह निर्णय देता फिरे कि हम स्वतन्त्र हों या न हों, या हों तो किस हद तक। इसके अलावा यह जो कथित सभ्यता और संस्कृति का प्रचार है, जिसे गोरों का बोझ बताया गया है, केवल ढोंग और बेईमानी है। क्या यह बात सच नहीं है कि व्यापार तथा राजकार्य के बहाने हमारी गाढ़ी कमाई का सारा धन बराबर इंगलैंड भेजा जा रहा है? यह सरासर शोषण है। यह तो साफ है की ब्रिटेन न तो कोई परोपकार कर रहा है और न कोई त्याग ही कर रहा है। महात्मा गांधी ने इसी शोषण और ढोंग के विरुद्ध आवाज़ उठाई है।

स्मिथ जल्दी-जल्दी टहलता रहा। आनन्दकुमार कहते गए—फिर एक बात और, यदि आप सभ्यता के मिशनरी हैं तो आपके हाथों में तोप

और तमंचे क्यों हैं ? हम भारतीयों ने भी कभी संसार में सभ्यता का, नये सत्य का प्रचार किया था, और उसके लिए हमारे देश के लोग बाहर गए थे, पर वे हाथ में हथियार लेकर नहीं गए थे। आधी दुनिया आज भी हमारी उस सभ्यता का लोहा मानती है···

मिस्टर स्मिथ ने समझ लिया कि इस व्यक्ति से तर्क करना व्यर्थ है। बोले—मैं दुर्भाग्य से एक अफसर हूं, नहीं तो मैं आपको चुनौती देकर एक सभा के सामने आपसे शास्त्रार्थ करता। पर यह नहीं हो सकता। मैं इतना ही कह सकता हूं कि आप अपने तजुर्बे से जान जाएंगे कि आप गुमराह हैं। अफसोस है कि होगा तो वही, जो मैं कह रहा हूं, पर आप लोगों की धींगा-धींगी और हठधर्मी के कारण सैकड़ों घर बरबाद हो जाएंगे और प्रति-सामाजिक शक्तियों को बढ़ावा मिलेगा। धन्यवाद।

आनन्दकुमार तथा रूपवती उठ खड़े हुए। रूपवती ने आनन्दकुमार को याद दिलाया कि श्यामा की बात तो रह ही गई।

तब आनन्दकुमार ने फिर श्यामा की बात चलाई, पर स्मिथ कुटिल ढंग से हंसकर बोला—मुझे अभी तक कोई सूचना नहीं मिली है। आप पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर जानसन से मिलें।

फिर भी आनन्दकुमार ने कहा—मैं आपसे शिकायत करता हूं कि ऐसी-ऐसी घटना हुई, आप मुझे उसका पता बताएं और यह भी सूचना दें कि वह किस जुर्म में पकड़ी गई है। इसे हैबिअस कार्पस की दरख्वास्त समझिए···

अभी थोड़ी देर पहले जो स्मिथ श्वेतांग जाति के मिशन की बात कह रहा था, अब जैसे वह स्मिथ रह ही नहीं गया था। यह स्मिथ तो शेक्सपियर, न्यूटन, गैल्सवर्दी, शा, ईट्स का सम-पर्याय अंग्रेज नहीं बल्कि यह क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्ज़, डायर, ओडायर की पंक्ति में था। बोला—आप लिखकर मेरी अदालत में दरख्वास्त दीजिए, मैं कार्रवाई करूंगा। धन्यवाद···

अब यहां रुकना व्यर्थ था। इसलिए आनन्दकुमार बाहर निकल पड़े।

वह अभी मजिस्ट्रेट साहब के बंगले के बाहर पहुंचे ही थे कि एक

सिपाही ने हाथ दिखाकर उनकी गाड़ी रोक ली। रूपवती ने समझा कि अब वह घड़ी आ गई जिसकी कल से प्रतीक्षा थी। ब्रेक लगाते हुए आनन्दकुमार को रूपवती ने जितना बन पड़ा आलिंगन में बांध लिया, पर गाड़ी रुकने पर पुलिस वाले को सामने देखकर वह संभलकर बैठ गई।

उस पुलिस वाले ने इधर-उधर देखकर जल्दी में कहा—आप ही का नाम आनन्दकुमार है न ?

—हां।

आनन्दकुमार की भौंहें तन गईं। वे आशा कर रहे थे कि अगला वाक्य यह होगा 'चलिए आपके नाम वारण्ट है। मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।'

पर उस पुलिस वाले ने ऐसा कुछ नहीं कहा। वह जल्दी-जल्दी बोला—आप श्यामादेवी की खबर जानना चाहते हैं न ? वह जानसन साहब के बंगले में बन्द है। जानसन बड़ा ही बदमाश है। लोग उसके डर के मारे पुलिस लाइन में बहू-बेटी नहीं रखते। आप जल्दी से श्यामादेवी को घर ले आएं, नहीं तो जेल भिजवा दें···

कहकर वह सिपाही एकाएक चल पड़ा मानो उससे गाड़ी में बैठे हुए लोगों का कोई सम्बन्ध ही न हो। आनन्दकुमार के माथे पर बल पड़ गए, उन्होंने फिर से गाड़ी स्टार्ट की। तो रूपवती की आशंका ठीक ही थी।

आनन्दकुमार सीधे जानसन के बंगले की ओर चलने लगे, पर रूपवती ने कहा—आप कहां चल रहे हैं ?

आनन्दकुमार बोले—क्यों, मैं उस दुष्ट जानसन के यहां चल रहा हूं।—कहकर उन्होंने एक्सेलरेटर पर हाथ रखा।

रूपवती ने उन्हें रोकते हुए कहा—कुछ सोच तो लीजिए। यों हड़-बड़ाने से नतीजा अच्छा नहीं होगा। यह सम्भव है कि उस सिपाही ने जानबूझकर गलत खबर दी हो जिससे कि आप जानसन के बंगले पर जाएं और जानसन आपको गिरफ्तार कर ले।

आनन्दकुमार ने गाड़ी धीमी कर ली और वे एक सुविधाजनक स्थान में गाड़ी रोककर बोले—ऐसी हालत में मेरी राय है कि तुम कार ले

जाओ। मैं अकेले ही जाऊंगा।

—पर ऐसा करने से मामला हल नहीं होता। यदि वे आपके साथ कोई अवैध बर्ताव करना चाहते हैं, तो आपके अकेले जाने से उनकी हिम्मत और बढ़ेगी। फिर तो उनपर कोई रोकथाम रहेगी ही नहीं। इसलिए मेरी तो राय यही है कि आप घर चलिए, नहीं तो मैं साथ चलूंगी।

पर आनन्दकुमार इस बात पर राज़ी नहीं हुए। बोले—जब तुमने यह कह दिया कि जानसन मेरे साथ कोई अत्याचार करना चाहता है, तब तो मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि मैं उसके घर जाऊं और देखूं कि वह कितना बड़ा अत्याचारी है। अहिंसा का यही तकाज़ा है, नहीं तो मैं अपनी ही आंखों में कायर बन जाऊंगा।

रूपवती बोली—आप नाहक ही उनके अत्याचारों को परखना चाहते हैं। क्या उनके अत्याचारों के विषय में कोई सन्देह है या उनकी कोई सीमा है? क्या उन्होंने अवैध ढंग से उस लड़की को बन्द नहीं कर रखा है?

—इसीलिए तो मैं कह रहा हूं कि वहां तुम्हारा जाना उचित नहीं है, साथ ही मेरा जाना एक नैतिक कर्तव्य है।

जब आनन्दकुमार ने अन्तिम रूप से यह रुख ग्रहण किया, तो रूपवती भी मचल खड़ी हुई, बोली—मैं एक साधारण स्त्री हूं, पर हूं आखिर आपकी ही स्त्री, इसलिए मैं भी पीछे नहीं हटने की। यदि आप चलेंगे, तो मैं भी अवश्य चलूंगी।

आनन्दकुमार कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले—अच्छी बात है, जब ईश्वर की यही इच्छा है तो चलो।

कहकर उन्होंने गाड़ी स्टार्ट की।

गाड़ी आगे बढ़ रही थी, और रूपवती मन ही मन उद्विग्न हो रही थी कि आज न जाने क्या बदा है। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह सिपाही अवश्य किसी षड्यन्त्र का ही हिस्सा था। इन दिनों घटनाएं इस प्रकार हो भी रही थीं। पग-पग पर ब्रिटिश शासकों की बेईमानी इस प्रकार खुल रही थी कि रूपवती यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थी कि

कोई पुलिस का सिपाही भी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रख सकता है। वह समझती थी कि इसमें कहीं कोई धोखा अवश्य है।

आनन्दकुमार ने धड़ल्ले के साथ जानसन के बंगले के अन्दर प्रवेश किया, इतने धड़ल्ले से कि दरवाजे पर खड़े सिपाही ने उन्हें सलामी दी।

यहां तक तो सब ठीक था, पर जब वे रूपवती के साथ गाड़ी से उतरे तो किसीने दरवाजा नहीं खोला, यद्यपि न जाने क्यों यह मालूम हो रहा था कि बंगले के अन्दर से कोई उनकी गतिविधि पर नज़र रख रहा है।

इधर-उधर देखकर आनन्दकुमार ने दरवाज़े पर दस्तक दी।

थोड़ी देर बाद एक सफेदपोश सिपाही आया और उसने उन्हें भीतर बैठाकर धागे में पिरोई गई पुर्जियों का एक बंडल और एक पेंसिल थमा दिया। आनन्दकुमार ने उसमें अपना नाम लिख दिया और साथ ही लिखा कि वे मिस्टर जानसन से मिलने आए हैं।

जब वह सफेदपोश सिपाही आनन्दकुमार की पुर्जी लेकर भीतर गया, तो उधर कुछ खुसर-पुसर हुई और थोड़ी देर बाद मिस्टर जानसन सामने प्रकट हुए।

जानसन ने आते ही खड़े-खड़े पूछा—आप लोग मुझसे क्यों मिलने आए हैं? मेरे पास वक्त बहुत थोड़ा है। जल्दी से जो कुछ कहना है कहिए···

आनन्दकुमार इससे भी बुरे स्वागत के लिए तैयार थे, इसलिए वे तनिक भी विचलित न होकर बोले—सच कहा जाए तो मैं आपसे मिलने नहीं आया, मैं तो श्यामा से मिलने के लिए आया हूं, वह श्यामा जिसे आपने गैरकानूनी ढंग से यहां बन्द कर रखा है।

जानसन सुनकर आगबबूला हो गया। बोला—आप भूल रहे हैं कि अभी ब्रिटिश साम्राज्य कायम है। आप ऐसे बोल रहे हैं मानो गान्धी का राज्य हो गया हो। कृपया आप यहां से तशरीफ ले जाइए, यहां श्यामा या और कोई नहीं है। मैंने तो कभी श्यामा का नाम तक नहीं सुना। वह कोई लड़का है या लड़की?

अब तक रूपवती आनन्दकुमार को संभालने की बात ही सोच रही

थी, पर इस बात पर उसे स्वयं इतना क्रोध हो आया कि वह बोली—आप शायद मुझे नहीं पहचान रहे हैं, पर मैं आपको पहचान रही हूं। आप ही तो सिपाहियों के साथ दो घण्टे पहले मेरे घर पर आए थे, और पोर्च में जो मोटर खड़ी है, उसमें बिठाकर उसे ले आए···

जानसन आदर्श टामी था। वह इतने पर भी नहीं झेंपा। बोला—मैंने जो कुछ किया, सरकारी हुक्म की तामील करते हुए किया। मैं उसके लिए किसीको जवाबदेही करने के लिए तैयार नहीं हूं। यदि आप समझती हैं कि मैंने कोई गैरकानूनी काम किया, तो अदालत में मेरे खिलाफ मुकदमा चला सकती हैं और भी जो कुछ बन पड़े सो कर सकती हैं। मैं आप लोगों से बात नहीं करना चाहता।

रूपवती इसके उत्तर में अभी कुछ कह नहीं पाई थी कि आनन्दकुमार ने कहा—आपको अपने पशुबल पर इतना भरोसा है कि आप समझते हैं कि आप चाहे जो कुछ कर सकते हैं, पर आप यह भूल न जाएं कि हमारी लड़ाई इसी पशुबल के साथ है। हम पशुबल के विरुद्ध पशुबल का प्रयोग नहीं करते, पर हम उसके सामने न तो घुटना टेकते हैं, न सिर झुकाते हैं। यदि आप हमारी बातों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं देंगे, तो हम दोनों यहीं पर सत्याग्रह करेंगे। हम आपके अत्याचार से भागते नहीं हैं, हम तो कहते हैं कि जितना अत्याचार तथा आपसे जो कुछ भी करते बने कर लीजिए।

जानसन इतनी दूर जाने के लिए तैयार नहीं था। वह पहले के मुकाबले में कुछ नरम पड़कर बोला—मैं आपसे कह रहा हूं कि मैंने श्यामा को गिरफ्तार जरूर किया, पर वह मेरे बंगले में नहीं है।

रूपवती बोली—अभी तो आप कह रहे थे कि आपने श्यामा नाम ही कभी नहीं सुना और यह भी नहीं जानते कि वह लड़का है या लड़की।

जानसन इसपर बिल्कुल निर्लज्ज की तरह बोला—मैं हुक्म का ताबेदार हूं, मुझे जो हुक्म मिलता है, मैं वैसा ही करता हूं। मेरा काम सोचने या 'क्यों' पूछने का नहीं है, मेरा काम तो हुक्म मानना है···। मैंने इसलिए श्यामा के सम्बन्ध में कोई बात बताने से इनकार किया था कि मुझे ऐसा ही हुक्म मिला था। मैं उसीका पालन कर रहा था।

आनन्दकुमार ने कहा—मैं आपके साथ कोई तर्क नहीं करना चाहता, पर आप भूल न जाएं कि मुझे भी कानून का कुछ पता है। क्या आप इस बात के लिए मजबूर नहीं हैं कि किसी कैदी को कहां आप रख रहे हैं, यह बताएं या मांग की जाने पर उसे अदालत में पेश करें ?

जानसन बला टालने की दृष्टि से बोला—मैं कानून के मामले में बिल्कुल कच्चा हूं। यदि आपको कोई गूढ़ कानूनी बहस करनी है, तो आप मिस्टर स्मिथ के पास जाएं।

—मैं किसीसे कानूनी बहस नहीं करना चाहता। मैं तो केवल अपनी भतीजी का पता चाहता हूं।

जानसन ने व्यंग्य के साथ कहा—मैंने तो यह सुना है कि वह लड़की आपकी कोई नहीं लगती।

आनन्दकुमार बोले—हो सकता है कि अब तक कोई न लगती हो, पर मैं उसे गोद तो ले सकता हूं।

जानसन पहले की तरह रुखाई के साथ बोला—यह आपका निजी मामला है, मैं इसमें कोई दखल नहीं देना चाहता।

रूपवती बोली—हम लोग तो सिर्फ उसका पता चाहते हैं, बाकी बातों से हमें भी कोई मतलब नहीं है।

जानसन बोला—आप यदि मेरी बात नहीं मानतीं तो सारे बंगले की तलाशी ले लें, उसके बाद भी यदि श्यामा न निकले, तब तो आप चली जाएंगी।

जानसन की इस चुनौती का फौरन असर हुआ।

आनन्दकुमार और रूपवती में अर्थपूर्ण दृष्टि-विनिमय हुआ। दोनों सहसा किसी नतीजे पर पहुंच गए।

जानसन ने मौका देखकर और एक चोट करते हुए कहा—यह अच्छी अहिंसा रही कि आप किसीके घर पर चढ़ाई करते हैं, उसपर गलत आरोप लगाते हैं, धमकियां देते हैं और जब कहा जाता है कि बंगले की तलाशी ले लीजिए, तो एक-दूसरे का मुंह देखते हैं। मिस्टर कुमार, आप तो मजिस्ट्रेट भी रहे हैं, इतना तो आप जानते ही होंगे कि हम किसी मुलज़िम को चौबीस घण्टे से अधिक जेल के बाहर के हवालात में भी नहीं

रख सकते···

आनन्दकुमार ने नरम पड़कर कहा—पर इस समय तो कानून की पाबन्दी कहीं भी नहीं हो रही है, इसीलिए मैं दुविधा में पड़ा हुआ हूं। फिर आपने पहले ही झूठ से शुरू किया।

जानसन बोला—जिस बात के लिए मैं स्वयं लज्जित हूं, आप उसी बात को फिर कह रहे हैं। मैंने पहले ही कहा कि मेरे पास समय कम है, आप जल्दी से तलाशी ले लीजिए और मेरी छुट्टी कीजिए।

रूपवती ने आनन्दकुमार से कहा—श्यामा यहां तो नहीं है, पर यह इनसे पूछ लीजिए कि वह कहां है ?

जानसन अपनी चालाकी की सफलता पर बहुत खुश हुआ, बोला—आप मुझसे क्यों ऐसी बात पूछती हैं ? मिस्टर कुमार जानते हैं कि कानून के अनुसार उसे कहां होना चाहिए।

तीन मिनट के अन्दर आनन्दकुमार की गाड़ी जेल के बाहरी अहाते के अन्दर दौड़ रही थी, पर वहां पता लगा कि श्यामा जेल में नहीं है। तब गाड़ी फिर जानसन के बंगले की ओर दौड़ी, पर अब की बार गाड़ी को बंगले के अहाते के अन्दर घुसने नहीं दिया गया। तब आनन्दकुमार फिर स्मिथ के पास गए, पर कहीं उन्हें कुछ भी पता नहीं चला। संध्या-समय पति-पत्नी हारकर घर में बैठ गए।

शान्ति और व्यवस्था की इसी प्रकार रक्षा हो रही थी।

१५

श्यामा को जानसन के बंगले में तीन-चार दिन हो गए थे। वह जिस कमरे में रखी गई थी, उसे किसी भी प्रकार हवालात का कमरा नहीं कहा जा सकता था। वह एक सुसज्जित कमरा था, अवश्य उसके सारे जंगलों पर लोहे की छड़ें लगी हुई थीं।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसे यहां पर क्यों रखा गया था। न तो कोई उससे मिलने आया, न उससे किसीने कुछ पूछा और न कुछ कहा। हां, बारी-बारी से तीन बूढ़े सिपाहियों का उसपर पहरा रहता था, जो एक हद तक उसके नौकर का काम भी करते थे। मेहतर और खानसामा अलग आते थे।

श्यामा ने कई बार इन लोगों से कहा—तुम अपने साहब से कहो कि या तो मुझपर मुकदमा चलाया जाए या मुझे छोड़ दिया जाए।—पर किसी ने लौटकर हां या ना कुछ जवाब नहीं दिया। जब फिर भेंट होने पर वह उस सिपाही से वही बात कहती, तो वह फिर कहता कि मैं कहूंगा, फिर भी कोई जवाब नहीं मिलता था।

चौथे दिन श्यामा ने तय कर लिया कि आज इस मामले को अन्तिम परिणाम तक पहुंचा देना है। उसने नाश्ता लेते समय ड्यूटी वाले बूढ़े सिपाही से बहुत कुछ सख्त बात कही। वह सिपाही चला गया, बाद में मालूम हुआ कि उसकी ड्यूटी ही बदल दी गई है। श्यामा दिन-भर सोचती रही और इस नतीजे पर पहुंची कि इस तरह काम नहीं चलेगा। कुछ और करना पड़ेगा।

अगले दिन जब नाश्ता आया, तो उसने ट्रे समेत सारा नाश्ता बाहर फेंक दिया। कप, टी-पाट, तश्तरियां इधर-उधर बिखर गईं, कई चीज़ें

फूट भी गई, सामान लाने वाला खानसामा परिस्थिति देखकर एक मिनट भौंचक्का खड़ा रहा, फिर बिना कुछ कहे-सुने चला गया।

थोड़ी देर बाद बंगले का मेहतर आया और वह सारी चीजें बटोरकर झाड़ लगाकर चला गया। किसीने उससे न तो यह पूछा कि उसने नाश्ता क्यों फेंका और न उसे दोबारा नाश्ता भेजा गया।

ड्यूटी वाला सिपाही उसपर और दिनों की तुलना में कुछ अधिक सावधानी से निगरानी रखता रहा, पर वह दूर ही बना रहा। वह उसे बात करने का अवसर नहीं देना चाहता था। लंच के समय यथारीति खाना आया, मानो कुछ हुआ ही न हो। हां, खानसामा कुछ चौकन्ना अवश्य था। उसने अभी मेज़ पर खाना लगाना शुरू ही किया था कि श्यामा ने मेज़ पर की सारी चीजें उठाकर फेंक दीं, फिर उसने लाया हुआ और भी सामान फेंक दिया। खानसामा ने भागकर जान बचाई। बात यह है कि जो अन्तिम चीजें फेंकी गईं, वे खानसामा पर निशाना लगाकर फेंकी गई थीं।

फिर मेहतर आया और उसने बिना कुछ कहे-सुने सारी सफाई की।

दो-तीन घंटे तक फिर किसीने कोई खबर नहीं ली। अब श्यामा को अच्छी तरह भूख लग आई थी, बल्कि सच तो यह है कि उसकी आंतें कुड़कुड़ा रही थीं, पर ज़िद के कारण उसे भूख की ज्वाला मालूम नहीं हो रही थी। वह चुपचाप लेटी रही। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आगे क्या करना है, पर उसने एक पक्का इरादा कर लिया था कि सारी बातों का निर्णय किए बिना खाना नहीं खाना है।

तीन-चार बजे के लगभग जो चाय रोज़ आती थी, वह आज नहीं आई। इससे श्यामा को आश्चर्य हुआ और नहीं भी हुआ। वह दो बार खाने की चीज़ों को फेंक चुकी थी और साथ ही कई बर्तन फोड़ चुकी थी। ऐसी अवस्था में आगे खाना न पहुंचना स्वाभाविक था।

तो क्या वे उसे भूखों मार डालना चाहते हैं?

ढंग तो कुछ इसी प्रकार का मालूम होता है। गत पांच दिनों से वह यहां है, उसपर पहरा ज़रूर बना हुआ है, समय पर सफाई भी होती है, खाना भी पहुंचाया जाता है, पर बाकी यह मालूम होता है कि जैसे

वह प्रशान्त महासागर के किसी छोटे-से टापू में पड़ी हो, जहां जीवन की प्रतिध्वनि मुश्किल से पहुंचती है।···

कई घंटे और निकल गए, यहां तक कि रात के खाने का समय आ गया; पर न तो खाना आया न खानसामा। यदि खाना आता और वह उसे फेंक देती, तो उसके अन्दर प्रतिरोध जाग्रत् रहता और उसे कोई कष्ट नहीं होता, पर इस प्रकार भुला दिया जाना, अवज्ञा का शिकार होना, यह असहनीय था। फिर भी वह कर क्या सकती थी, चुपचाप पड़ी रही। कमज़ोरी में शायद उसे कुछ झपकी-सी आ गई।

पता नहीं रात के कितने बजे थे। एकाएक बड़े ज़ोर से जयकारे की आवाज़ मालूम हुई। हां, बिल्कुल स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी।

—महात्मा गांधी की जय !

—भारतमाता की जय !

ऐसा मालूम हो रहा था कि जयकार करने वाली भीड़ और भी पास आ गई। बहुत ज़ोर से सीटियां बज उठीं और जयकारे के साथ-साथ बहुत पास शायद उसके कमरे के बाहर बूटों की खटखट सुनाई पड़ने लगी। वह यंत्रचालित की तरह दौड़कर बाहर निकली, और चिल्लाकर बोल उठी—भारतमाता की जय ! महात्मा गांधी की जय ! ···

वह अपने अनजाने में उस तरफ जाने लगी, जिधर से जयकारे की आवाज़ आ रही थी। पर वह कुछ ही दूर बढ़ी होगी कि किसीने उसे पीछे से खींच लिया और उसे लाकर कमरे में बन्द कर दिया। अब तक वह कभी बंद नहीं हुई थी, पर आज बाहर से ताला पड़ गया।

जयकार जारी रही। फिर पता नहीं क्या हुआ। चीख-पुकार सुनाई पड़ी, शायद भीड़ पर लाठी चार्ज हुआ। फिर जयकार एकदम बंद हो गई और बीच-बीच में रात्रि के अंधकार को चीरती हुई जब-तब केवल खट-खट सुनाई पड़ने लगी।

यह स्पष्ट ही था कि लोगों को किसी तरह उसकी बात का पता लग गया था और वे लोग प्रदर्शन करने आए थे। पर पशुशक्ति के सामने वे टिक नहीं सके। शायद दो-चार अस्पताल भी पहुंच गए हों।

जो कुछ भी हो, पहले उसके मन में जो यह भावना ज़ोर कर रही थी

कि वह अनाथा है, परित्यक्ता है, प्रशान्त महासागर के टापू में पड़ी हुई है, वह भावना जाती रही और उसे फिर एक बार अनुभव हुआ कि वह उस महान संग्राम का एक अंश है, जो इस समय साम्राज्यवादी ब्रिटेन और गांधीवादी भारत में चल रहा था।

वह इस समय अपने को भारत की औसत महिला की प्रतीक समझने लगी। उसी तरह भूखी, सताई हुई, पर आगे बढ़ने के लिए जीवन-संग्राम में लड़कर अपना स्थान पाने के लिए तैयार, किसी भी त्याग के लिए प्रस्तुत, भले ही इस समय वह ताले के अन्दर पड़ी हो, पर उसे न तो कोई मार सकता है, न शस्त्र उसे छेद सकता है, न आग उसे जला सकती है क्योंकि वह नवीन भारत की जाग्रत् आत्मा है।

अगले दिन सुबह अभी श्यामा बिस्तर से उठी भी नहीं थी कि वह जिस हालत में थी उसी हालत में छोड़ दी गई।

कैसे क्या हुआ, यह वह समझ नहीं पाई। उसने देखा कि उसे बग्घी से (उन दिनों पुलिस वालों के पास इनी-गिनी मोटरें होती थीं) आनन्द-कुमार के बंगले के सामने उतार दिया गया। न किसीने उससे यह कहा कि वह क्यों पकड़ी गई थी और न किसीने उससे बताया कि वह एकाएक क्यों मुक्त कर दी गई है।

१६

श्यामा की गिरफ्तारी की खबर जेल में उसी दिन पहुंच चुकी थी। सुन-कर त्रिलोचन आदि ने उसकी बड़ी प्रतीक्षा इस अर्थ में की थी कि वे सोचते थे कि श्यामा बगल वाली औरत जेल में लाई जाएगी और उसके लगाए हुए नारे सुनाई पड़ेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ।

राजेन्द्र ने अगले दिन त्रिलोचन से पूछा—कहीं वह खबर गलत तो नहीं थी ?

त्रिलोचन अपने को जेल के बाहर की खबरें मंगाने और बाहर खबर भेजने का विशेषज्ञ समझता था। उसे बड़ी ठेस लगी, उसने कहा—नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता। पूरी खबर आज मालूम होगी। ऐसा भी तो हो सकता है कि उन्होंने श्यामादेवी को कुछ पूछताछ के बाद छोड़ दिया हो।

ऐसा हो क्यों नहीं सकता था ? जरूर हो सकता था। संध्या समय जब रात के वार्डर आए, तो त्रिलोचन को श्यामा के सम्बन्ध में जो खबर मालूम हुई उससे उसके माथे पर बल आ गए। जानसन साहब उसे अपने बंगले पर उठा ले गए हैं और आनन्दकुमार के लाख प्रयत्न करने पर भी जानसन ने यह नहीं माना कि श्यामा उसके बंगले पर है। त्रिलोचन जानता था कि जानसन किस प्रकार का आदमी है। वह खबर सुनकर दहल उठा, और यह सहसा तय नहीं कर पाया कि राजेन्द्र को पूरी खबर बतानी चाहिए या नहीं।

पर उसी समय राजेन्द्र सामने आ गया और त्रिलोचन को सोचने का विशेष समय नहीं मिला। वह बोला—पक्के तौर पर इतना ही पता लगा है कि पुलिस कप्तान स्वयं उन्हें गिरफ्तार करने के लिए गया था, बाकी कोई बात ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सकी। शायद अविनाश जी को कुछ

पता लगा हो। मैं उन्हें खबर भेज रहा हूं।

राजेन्द्र बहुत कुछ जानना चाहता था, पर त्रिलोचन ने यह बात बताने से कतई इनकार किया कि श्यामा मिस्टर जानसन के बंगले में कैद है। उसने किसी तरह राजेन्द्र को टरका दिया और फिर एक पुर्ज़ी में सारी बात लिखकर रात की ड्यूटी के एक नम्बरदार के हाथ अविनाश के बैरक में पहुँचाई।

रात के बारह बजे तक उधर से जवाब आ गया—बहुत बुरी बात हुई है। जानसन एक बहुत ही दुष्ट अधिकारी है। वह न कर सके ऐसा कोई बुरा काम नहीं है। यह स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में वह जो कुछ कर रहा है, वह उसकी वैयक्तिक सनक की बदौलत नहीं है, बल्कि एक योजना के अनुसार हो रहा है। वे यह समझ रहे हैं कि इसी वीरांगना के कारण उस दिन का उनका सारा षड्यंत्र नष्ट हो गया, और राष्ट्रीय शक्तियों को आनन्दकुमार ऐसे विद्वान और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति की सेवाएं मिलीं। इसलिए वे राष्ट्रीय शक्तियों की रीढ़ तोड़ना चाहते हैं। मैंने अभी सारी खबर उचित आदेश के साथ बाहर भेज दी है। हम आज पहली बार यह अनुभव कर रहे हैं कि हम कैदी हैं। आज यह लोहे के जंगले और अड़गड़े मुझे सचमुच खल रहे हैं। खैर, देखा जाएगा···

त्रिलोचन ने इस पत्र को एक के बाद एक करके तीन बार पढ़ा, फिर उसने राजेन्द्र को बुलाकर सारी बात बताई, और उसके हाथ में यह पत्र रख दिया। रात्रि के अंधकार में जेलखाने के सींखचों के भीतर ये दो युवक उस पत्र को पढ़ते रहे और उनके मन में भी वही भावना जाग रही थी जो उस अविनाश के मन में जगी थी।

आज ये सींखचे सचमुच उन्हें अखर रहे थे।

राजेन्द्र ने कहा—मुझे तो कुछ-कुछ यह संशय हो रहा है कि स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन के जोखिमों में घसीटना उचित है या नहीं···

त्रिलोचन बोला—बिना त्याग और तपस्या के कोई भी बड़ा काम सफल नहीं हो सकता। मैं तो यह समझता हूँ कि कोई भी त्याग व्यर्थ नहीं जाता।

—पर यह त्याग ? त्रिलोचन, तुम समझ नहीं रहे हो।

—मैं खूब समझ रहा हूं। जब तक साम्राज्यवाद अपने नग्न रूप में सामने नहीं आता, तब तक उसके प्रति जो घृणा लोगों के मन में उत्पन्न होनी चाहिए, वह नहीं होगी, और जब तक घृणा उत्पन्न नहीं होगी, तब तक क्रान्ति का रथ आगे नहीं बढ़ेगा। क्योंकि घृणा ही वह पैट्रोल है, जो भभकता जाता है और परिचालिका शक्ति बनकर गाड़ी को आगे बढ़ाता है।···

राजेन्द्र बोला—तुम तो अजीब बात कर रहे हो। हमारा दर्शन तो हृदय-परिवर्तन का दर्शन है। हम घृणा में नहीं प्रेम में विश्वास करते हैं। रामचन्द्र ने सही कहा था कि तुम्हें उन क्रान्तिकारियों से पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिए। मालूम होता है कि तुम उनकी विचारधारा को संपूर्ण रूप से अपना चुके हो···

त्रिलोचन धीरे से बोला—राजेन्द्रजी, अब तक मैंने आपकी इज़्ज़त की है, पर मेरी समझ में यह नहीं आता है कि इस समय न जाने श्यामादेवी पर क्या बीत रही है, और आप हृदय-परिवर्तन और प्रेम की बातें कर रहे हैं। मैं तो यही कहूंगा कि आप कायर हैं, जाइए, सो जाइए। मैं तो इतना ही समझता हूं कि आज यदि मैं जेल के बाहर होता, तो मैं उस ज़ालिम का खून पी लेता।—कहकर उसने उधर से आई हुई चिट्ठी फाड़ डाली और उसे खा गया।

फिर उसने राजेन्द्र की ओर एक बार भी नहीं देखा और कंबल में मुंह ढककर सो गया। क्या वह रो रहा था ?

राजेन्द्र भी उससे कुछ नहीं बोला। वह सोचने लगा। पता नहीं जीवन अब किधर जाएगा, कौन-से मोड़ लेगा। उसने जो मार्ग चुना था, वह मरुमय था, पर उसकी आंखों के सामने हर समय एक नखलिस्तान बना रहता था। आज उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे एक झुलसाने वाली गरम आँधी ने नखलिस्तान की सारी हरियाली बालू से ढक दी है और जीवन एक अविच्छिन्न निर्मम मरुभूमि-मात्र रह गया है।

जब अगले दिन राजेन्द्र उठा, तो वह एक युवक के बजाय अधेड़ या तपेदिक का रोगी-सा लग रहा था। उसकी आंखें बैठ गई थीं गाल पिचक-

से गए थे । और आंखों में ऐसी दृष्टि थी, जिसे देखकर सहसा भय मालूम होता था । वह एक किनारे बैठकर आश्रम भजनावली के पन्ने उलटने लगा और त्रिलोचन खैनी मलते-मलते जबानी और लिखे हुए संदेशों के भेजने के अनन्त कार्यक्रम में व्यस्त हो गया ।

थोड़ी देर बाद त्रिलोचन को जैसे कुछ याद आया, वह राजेन्द्र के पास आकर बोला—आप अपनी माता जी से कह दें कि वे मेरे परिवार की सहायता करने के झगड़े में न पड़ें । हजारों राजनैतिक कैदियों के परिवारों की जो दशा हो रही है, वहीं मेरे परिवार की भी होगी । फिर मैं तो थोड़े दिनों में छूटने वाला हूं ।

राजेन्द्र ने इसके उत्तर में कुछ नहीं कहा और न त्रिलोचन ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा ही की । वह वहां से फौरन चला गया और पहले से जो काम कर रहा था उसीमें व्यस्त हो गया ।

१७

जब श्यामा आनन्दकुमार के घर पर पहुंची तो उसके बाल बिखरे हुए थे, चेहरा उतरा हुआ था और ऐसा मालूम होता था कि वह बहुत तकलीफ में है। रूपवती ने उसे ध्यान से देखा, पर कुछ बोली नहीं। थोड़ी देर बाद जैसे कुछ सोचकर बोली—ग़ुसलखाने में चली जाओ। गरम पानी भिजवा रही हूं।

पर श्यामा बोली—चाची जी, आपको तो मेरे नहाने की पड़ी है, पर मैं भूखी हूं, कल से मैंने कुछ भी नहीं खाया।

रूपवती की जीभ पर एकसाथ इतने प्रश्न आए कि उनमें से एक भी स्फुट होकर बाहर नहीं आ सका, बोली—जाओ, तुम नहा लो, मैं तब तक कुछ खाना तैयार करती हूं।

नहाने पर इतना ज़ोर देना श्यामा को कैसा-कैसा लगा। पर वह नहाने के कमरे में चली गई। थोड़ी देर बाद जब वह नहाकर निकली, तो आनन्दकुमार से उसकी भेंट हो गई। रूपवती भी वहीं पर थी।

श्यामा ने आनन्दकुमार से कहा—मैं तो समझ रही थी कि आप जेल की रोटियां तोड़ रहे होंगे, पर आप तो यहां मौजूद हैं।

यह एक सहज और सरल परिहास था, पर रूपवती को यह बात अच्छी नहीं लगी, बोली—श्यामा, तुम ज़रूरत से ज़्यादा बातूनी हो, तुम्हें यह समझना चाहिए कि तुम एक स्त्री हो और जिस साम्राज्य से लोहा लेने चली हो वह बड़ा अत्याचारी है। दो-एक चाचाओं और दो-एक भतीजियों के जेल जाने से कुछ नहीं होगा।

श्यामा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि रूपवती तो राष्ट्रीय आंदोलन के साथ बहुत सहानुभूति रखने वाली थी, बहकावे में आकर ही सही, वह कुछ

घंटों के लिए जेल भी हो आई थी, जब आनन्दकुमार ने तोंदियल राजाओं की वह सभा असफल कर दी, तो उसपर खुश भी हुई थी, पर आज यह क्या कह रही है ? कौन-सी ऐसी बात हो गई, जिसके कारण रूपवती के विचार बिल्कुल बदल गए। अब तो यह विश्वास करने का जी नहीं चाहता कि रूपवती ने स्वयं राजेन्द्र को घर पर बुलाकर आश्रय दिया था और वह स्वयं भी इन्हींके आश्रय में है।

आनन्दकुमार के साथ-साथ चाय की मेज़ की ओर बढ़ते हुए उसके पैर संकुचित हो गए, और वह सहसा समझ नहीं पाई कि वह आगे बढ़े या पीछे हटे। उसी समय आनन्दकुमार ने कहा—बेटी, तुम्हारे पीछे हम लोगों को बहुत झगड़े करने पड़े। पहले तो यह पता ही नहीं लगा कि तुम्हें कहां रखा गया है, फिर मैं कई दफ्तरों की खाक छान गया, फिर भी कुछ पता न लगता, यदि एक सिपाही स्वयं मुझे यह खबर न दे जाता···

—सिपाही कौन ?

तब आनन्दकुमार ने सारी बात सुनाई कि किस प्रकार वे मिस्टर स्मिथ के बंगले से निराश होकर लौट रहे थे कि गाड़ी रोककर एक पुलिस के सिपाही ने यह बतलाया कि श्यामा जानसन के बंगले पर रखी गई थी।

रूपवती ने बीच में बोलते हुए कहा—आप इसे यह भी तो बताइए कि उस सिपाही ने जानसन के विषय में और भी क्या-क्या बातें बताई थीं।

आनन्दकुमार ने एक बार रूपवती की ओर ऐसे देखा जैसे किसी सुर का आलाप करते समय बीच में ताल कट गया। पर फौरन ही संभलते हुए बोले—बातें तो फिर भी होती रहेंगी, चलो आओ बेटी, हम लोग कुछ खा-पी लें···

सब लोग खाने की मेज़ पर बैठ गए। यद्यपि आनन्दकुमार पहले ही नाश्ता कर चुके थे और उनके नियमानुसार उन्हें इस समय कुछ खाना नहीं चाहिए था, फिर भी रूपवती को आश्चर्य में डालकर वे श्यामा के साथ फिर से नाश्ता करने लगे।

रूपवती ने यद्यपि अभी कुछ नहीं खाया था और यह उसके नाश्ते का समय था, फिर भी उसने कुछ नहीं खाया। आनन्दकुमार ने एक बिस्कुट पर दांत मारते हुए कहा—सचमुच, यह अंधेरनगरी है, कि मैंने तो व्याख्यान दिया, और मेरे ही कारण वह सभा भंग हुई, जिसपर उन्हें इतना क्रोध है, लेकिन पकड़ी तुम गईं—कहकर कुछ अधिक ध्यान से श्यामा की तरफ देखते हुए बोले—पर बेटी, मैं इसी नतीजे पर पहुंचा हूं, कि त्याग चाहे जिस रूप में भी हो, वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। मैं समझता हूं कि महात्मा जी ने सत्य और अहिंसा पर जो अत्यधिक जोर दिया है, उसका अर्थ यही है कि सही रास्ते पर जो त्याग किया जाएगा, वह देर या सवेर में अपना फल लाएगा ही। हो सकता है कि जिसे त्याग करना पड़ता है, उसका जीवन ऊपर से देखने पर व्यर्थ हो जाए, पर उसका परिणाम अच्छा अवश्य होता है।

श्यामा वाकई बहुत भूखी थी। उसके मन में जो थोड़ा-बहुत संशय और भय की भावना उत्पन्न हो गई थी, वह आनन्दकुमार की बातों से दूर हो गई और वह अच्छी तरह खाती-पीती रही। जब वह एक दौर समाप्त कर चुकी, तो वह बोली—मैं तो यह समझ रही थी कि मुझे जेल में रखा जाएगा, कम से कम छः महीने की सज़ा होगी। पर मुझे तो पांच दिन रखकर ही छोड़ दिया···

रूपवती बोली—दिनों की संख्या से कुछ नहीं होता। तीन दिन में भी इतना अत्याचार हो सकता है जो कि तीन साल में न हो सके। इन कई दिनों में तुम्हारा चेहरा बिल्कुल बदल गया है।

तब श्यामा ने तीन दिन तक किस प्रकार उसे खाना पहुंचाया जाता रहा, किस प्रकार सब ज़रूरत की चीजें समय पर दी जाती थीं, बाद को कैसे उसने एकाकीपन से ऊबकर अनशन किया, कैसे उसने तश्तरियां फोड़ डालीं और कैसे खानसामा जान लेकर भागा इत्यादि बातें सुनाईं।

आनन्दकुमार यह सारी कहानी पूरा रस लेकर सुन रहे थे, पर रूपवती यह समझ रही थी कि यह लड़की पूरी बात नहीं बता रही है। इसलिए जहां आनन्दकुमार दिल खोलकर हंस रहे थे और कई तरह के मन्तव्य देते जाते थे, वहां रूपवती बिल्कुल चुप बनी रही।

आनन्दकुमार ने सारी बात सुनकर कहा—मुझे ऐसा मालूम देता है कि तुम छोड़ दी गई हो, इसलिए अब मेरी बारी है।

रूपवती उद्विग्नता के साथ बोली—आप ऐसा क्यों समझ रहे हैं ? सम्भव है कि सरकार यह सोच रही हो कि आपने उस दिन जो कुछ किया वह एकाएक जोश में हो गया और आगे आप कुछ नहीं करेंगे। इसलिए शायद वे आपको न छेड़ें···

आनन्दकुमार बहुत मज़े में बात कर रहे थे, पर यह बात सुनकर वे जैसे एकाएक तैश में आकर बोले—यही तो मैं नहीं चाहता। यदि ब्रिटिश सरकार समझ रही है कि मैंने जोश में आकर सारी बातें कीं, तो यह सरकार की गलती है। यदि सरकार मुझे नहीं छेड़ेगी तो मैं सरकार को छेड़ूंगा। दस दिन पहले मेरे विचार चाहे कुछ भी रहे हों, पर अब मैं समझता हूं कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि वह महात्मा जी की पुकार पर तन-मन-धन से अपने को न्यौछावर कर दे। आखिर मैंने इतने सालों तक इतना पढ़ा, कुछ लिखा भी, पर उनका महत्त्व क्या है ? जब तक विचारों में यह शक्ति नहीं है कि वे विचार रखने वालों से त्याग कराएं, तब तक उन विचारों का मूल्य एक छदाम भी नहीं है। मेरा सारा पुस्तकालय का ज्ञान एक अनपढ़ आदमी के द्वारा दिए गए महात्मा गांधी की जय के नारे के मुकाबले में कुछ भी नहीं है।···

रूपवती ने फिर भी आनन्दकुमार को समझाने की चेष्टा की। बोली—मैं तो यह निश्चय कर चुकी हूं कि मैं इन झगड़ों में नहीं पड़ूंगी। यह नहीं कि अब मुझमें राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ सहानुभूति नहीं है, मैं यह अनुभव करती हूं कि मैं देश के लिए सब कुछ त्याग कर सकती हूं, फिर भी कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें मैं खतरे में डालना उचित नहीं समझती।

आनन्दकुमार ने कहा—तुम्हारी जगह पर तुम्हारा निर्णय शायद ठीक है, पर तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी अच्छे उद्देश्य के लिए नाप-तोलकर त्याग नहीं किया जा सकता। यानी किया तो जा सकता है, पर वह उस त्याग की पंक्ति में नहीं आ सकता जिसे सर्वस्व-त्याग कहते हैं—जैसा रानी लक्ष्मीबाई ने किया था।—इसके बाद वे

कहते जा रहे थे—जैसे श्यामा तैयार है—पर उन्होंने अपने को रोका और कहा—इसीलिए गीता में कहा है—"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" यानी इस धर्म के स्वल्प-मात्र आचरण से भी महान भय से त्राण मिलता है, महात्मा जी भी इस बात को मानते हैं। किसीकी सामर्थ्य इतनी ही है कि वह खद्दर पहने, तो वह इतना ही करे। किसीकी सामर्थ्य केवल इतनी है कि वह चार आना देकर कांग्रेस का सदस्य बने या तिलक स्वराज्य फंड में एक इकन्नी दे, तो वह भी अपनी जगह पर ठीक है और देश को उससे लाभ होता है। वह इतना ही करे।

आनन्दकुमार कहते-कहते रुक गए, और जंगले के अन्दर से बालरवि की ओर देखते हुए मानो उससे नई अनुप्रेरणा लेते हुए बोले—यहीं पर मैं समझता हूं कि क्रांतिकारी जिस मार्ग को बताते हैं, उसकी तुलना में महात्मा जी का बताया हुआ मार्ग श्रेष्ठ है। क्रांतिकारी जिसे भी अपना सदस्य बनाते है, उससे यह आशा करते हैं कि वह चरम त्याग के लिए प्रस्तुत रहे। कोई अपनी जान हथेली पर रखे, तभी उनके पन्थ में कदम रख सकता है, पर महात्मा जी कहते हैं, नहीं, सब कोई अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार लंका का पुल बनाने में हाथ बंटाओ। जिससे जितना बन पड़े वह उतना ही करे। इससे अधिक उससे आशा नहीं की जाती।

कुछ रुककर मानो एक नया अध्याय शुरू करते हुए वे बोले—यह भी एक बात है कि हमें एक व्यक्ति के त्याग पर राष्ट्रीयता की अपनी अट्टालिका को खड़ा नहीं करना है। छोटे-छोटे त्याग, छोटे-छोटे दान, छोटी कैदों और छोटे जुर्मानों पर ही हमारे देश के भविष्य की नींव रहेगी। कुछ इने-गिने लोगों को फांसी पर चढ़ाकर या आदर्श वीर बनाकर दम नहीं लेना है, सारी जाति को वीर बनाना है। भले ही उनकी वह वीरता चरम वीरता न हो···

आनन्दकुमार इसी प्रकार और भी बहुत-सी बातें कह गए। कहते-कहते एकाएक उन्हें जैसे किसी बात की याद आ गई और उन्होंने बताया—रूपवती को भी नहीं मालूम कि कल रात को जो जुलूस जानसन के बंगले पर गया था, वह यहीं से तैयार होकर गया था···।

श्यामा ने पूछा—हां, आपने उस जुलूस की बात तो बताई नहीं।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस जुलूस के ही कारण मैं छूट गई ।

आनन्दकुमार हंसे, बोले—यही तो हम लोगों की गलती है कि हम लोग झट से कार्य-कारण सम्बन्ध जोड़ बैठते हैं। मुझे भी ऐसा भ्रम होता, यदि यह न मालूम होता कि तुमने वहां हिंसात्मक अनशन कर ब्रिटिश सरकार की नाक में दम कर रखा था ।—कहकर वे हंसे ।

—हिंसात्मक अनशन कैसा ?

आनन्दकुमार ने उत्तर दिया—हिंसात्मक किसी दूर के अर्थ में नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से हिंसात्मक । तुमने तश्तरियां फोड़ीं और खानसामे पर तश्तरियों की वर्षा की, इन कृत्यों को किसी भी परिभाषा से अहिंसा नहीं बताया जा सकता ।

श्यामा ने कहा—मैंने इतना सोचकर कुछ भी नहीं किया था । मेरी जगह पर होते, तो आप भी ऐसा ही करते ।

आनन्दकुमार बोले—मैं तुम्हारी कोई निन्दा नहीं कर रहा हूं, बल्कि मैं यही बता रहा था कि बहुत तरह के प्रभावों से एक बात बनती या बिगड़ती है। हमें जहां तक बन पड़े निष्काम होकर सही कृत्य करते जाना चाहिए, सही कृत्य का परिणाम तो सही होगा ही ।

इसके बाद आनन्दकुमार ने जुलूस की बात सुनाई। लोग बहुत जोश में उनके पास आए थे। उन्होंने स्वयं उनके साथ जाना चाहा, पर उन लोगों ने यही कहा था—आप बड़े कामों के लिए रहें, ये छोटे काम हमारे लिए रहने दें ।

आनन्दकुमार ने कहा—मैं अभी तुम्हारे अनशन को हिंसात्मक बता रहा था, पर मुझे जब से मालूम हुआ था कि जानसन ने तुम्हें सम्पूर्ण गैरकानूनी रूप से बन्द कर रखा है, तब से मेरे मन में यही आ रहा था कि मैं उस दुष्ट का वध कर डालूं चाहे इसके लिए मुझे फांसी ही लग जाए। पर इसका कोई मौका नहीं था। इसके साधन भी मेरे पास नहीं थे। कल जब कुछ नौजवान कांग्रेसी मेरे पास आए, तो मैंने कहा, अब मौका है। उन लोगों ने मना किया, पर उनके निषेध से मैं रुकनेवाला नहीं था। एकाएक मुझे स्वयं ही एक बात याद आ गई थी जिससे मैं रुक गया था।

कहकर वे चुप हो गए ।

कई क्षणों तक जब वे आगे कुछ नहीं बोले, तो श्यामा ने पूछा—चाचा जी, क्या मैं पूछ सकती हूं कि वह कौन-सी बात है, जो याद आई ?

—बेटी, वह इतिहास की एक बात है । जब हज़रतअली एक दुश्मन की छाती पर चढ़कर तलवार से उसकी गर्दन अलग करने ही जा रहे थे, तो नीचे पड़े हुए दुश्मन ने उनके मुंह पर थूक दिया, इस बात पर हज़रत-अली को बहुत ज़्यादा गुस्सा आया। पर उन्होंने दुश्मन को छोड़ दिया और उठ खड़े हुए ।

—लोगों ने पूछा—या हज़रत ! यह क्या बात है ?

—मुझे ग़ुस्सा आ गया—अली ने कहा ।—मैं जब उसे मार रहा था तो उसे धर्म का शत्रु जानकर मार रहा था, पर अब जो मैं उसे मारता तो अपना शत्रु समझकर, यह गलत होता, इसलिए मैंने उसे छोड़ दिया ।

यह सुनाकर आनन्दकुमार ने कहा—मैं क्रोध से भरा हुआ था, इस-लिए मैं जुलूस में नहीं गया। यह अच्छा ही हुआ क्योंकि मैं जाता तो पता नहीं क्या कर बठता । जिन लोगों को भेजा गया था, उनपर लाठी चार्ज हुआ, और वे नारे लगाते हुए तितर-बितर हो गए। और अब तुम आ गई हो, इसलिए यह कहना पड़ता है कि जो कुछ हुआ सो अच्छा हुआ । क्रोध के वश में होकर और कुछ भी हो सत्याग्रह सम्भव नहीं है ।

इसी तरह कुछ देर तक आन्दोलन की गति के सम्बन्ध में बातचीत हुई। आदन्दकुमार ने बतलाया—मेरे पास कुछ स्थानीय नेता आए थे, वे मुझे स्थानीय कांग्रेस की अध्यक्षता तथा अन्य कई पद दे रहे थे। पर मैंने सारी बातों से इनकार कर दिया । इसका कारण यह है कि मैं राज-नीति में पड़ना नहीं चाहता । न मुझे यह रुचिकर लगती है, और न मैंने इसके लिए उपयुक्त प्रशिक्षण ही प्राप्त किया है।

श्यामा ने कहा—राजनीति में तो आप पड़ ही चुके हैं, अब आप उससे बच कैसे सकते हैं ।

—तुम जो कहती हो, वह कदाचित् सत्य है, पर किसी प्रकार की पार्टीबाज़ी में फंसने को जी नहीं चाहता ।

श्यामा ने मचलते हुए कहा—चाचा जी ! अकेला कोई कुछ नहीं कर

सकता, चाहे उसके विचार कितने ही अच्छे हों। यदि बुरे लोग षड्यन्त्र कर सकते हैं तो अच्छे लोगों में भी कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। आपने ही एक दिन कहा था कि भारत का दुर्भाग्य है कि यहां जो महापुरुष पैदा हुए, उनमें संगठन-शक्ति का अभाव रहा। और यदि सौभाग्य से यह शक्ति रही, तो उनकी संस्था एक धार्मिक संस्था बनकर रह गई। एक और सम्प्रदाय खड़ा हो गया। जो अच्छे लोग संगठित नहीं होंगे, तो बुरी शक्तियों के सामने वे बराबर मार और हार खाते जाएंगे।

आनन्दकुमार ने फिर भी कहा—बात सही है, पर अभी इस ओर मेरी रुचि नहीं है। अलग रहकर जो सेवा बन पड़ेगी, वही मैं करूंगा।

१८

प्रिंस ग्राफ वेल्स के भारत ग्रागमन की तैयारी ज़ोर-शोर से हो रही थी। कांग्रेस की कार्यकारिणी ने यह तय कर दिया था कि वे जब भारत में आएं, तो उनका बायकाट किया जाए। स्पष्ट कर दिया गया कि बायकाट का उद्देश्य किसी प्रकार का असम्मान दिखलाना नहीं, बल्कि प्रिंस ग्राफ वेल्स तथा अंग्रेज़ जाति को यह दिखलाना है कि भारत इस समय क्या चाहता है।

शासकों को यह पता लग गया कि कांग्रेस द्वारा संगठित यह बायकाट सफल रहेगा, और सरकार के पिट्ठू राजाग्रों, रायबहादुरों, रायसाहबों, अमन सभा के सदस्यों के सहयोग के बावजूद देश में कांग्रेस के आदेश का ही पालन होगा। इस प्रकार यह निश्चित-सा ही हो गया कि जिस उद्देश्य के लिए भारतवासियों के लिए राजदर्शन का प्रबन्ध हो रहा था, वह व्यर्थ जाएगा, फिर भी अब लौटने का रास्ता नहीं रह गया था।

युवराज १७ नवम्बर को जहाज़ से उतरे।

उनके जहाज़ पर से उतरते ही बम्बई शहर में झगड़ों का तांता लग गया। तीन-चार दिन तक बहुत ज़ोर का खून-खच्चर होता रहा, जिसमें लगभग सौ आदमी मारे गए और न जाने कितने घायल हुए। भीड़ किसी तरह भी काबू में नहीं आई। यहां तक कि महात्मा गांधी स्वयं उस भीड़ में घुसकर लोगों को समझाते रहे, पर लोगों ने तितर-बितर होने से इनकार कर दिया। इसपर महात्मा गांधी को इतना दुःख हुआ कि उन्होंने जनता द्वारा किए गए अनाचारों के प्रायश्चित्तस्वरूप पांच दिन तक अनशन रखा।

इसी समय गांधी जी ने वह प्रसिद्ध वाक्य कहा जो उन दिनों हरएक

की ज़बान पर चढ़ गया, "स्वराज्य मेरी नाक में महक रहा है।"

श्यामा ने जब यह बात सुनी, तो वह आपे से बाहर हो गई। बोली—महात्मा जी ने यह क्या अद्‌भुत बात कह दी और वे अनशन क्यों कर रहे हैं? जब उधर से अत्याचार होते हैं, तो उसके लिए कोई यह भी तो नहीं कहता कि गलती हुई, और जब हमारी तरफ से कोई गलती हो जाती है, तो हमारा सबसे बड़ा नेता उसके लिए अनशन करता है, यहां तक कि ऐसा वक्तव्य देता है, जिससे लोग बड़े भ्रम में पड़ जाते हैं।

इसपर आनन्दकुमार ने कहा—प्रत्येक बात को भावुकता की दृष्टि से देखना उचित नहीं है। महात्मा गांधी एक सेनापति की तरह हैं, इस कारण उन्हें सारी बातों पर सामान्य रूप से विचार करना पड़ता है। उन्हें भविष्य को भी अपनी आंखों के सामने रखना पड़ता है। मान लो बंबई में जिस प्रकार के दंगे हुए, वैसे ही भारत में सर्वत्र हों, तो क्या होगा? ब्रिटिश सरकार उसे हथियारों के ज़ोर से दबा देगी और लोगों में जो जोश बढ़ रहा है, वह पैरों तले रौंद दिया जाएगा। १८५७ के बाद किस प्रकार भारतवासी कुचल दिए गए यह तो तुम जानती ही होगी···

श्यामा फिर भी तर्क करती रही। बोली—यह भी तो हो सकता है कि अब की बार जनता को दबाना असंभव हो जाए। संभव है, क्रान्ति हो जाए।

—पर बेटी, हमने तो जान-बूझकर क्रान्ति के मार्ग से अपने को अलग रखा। हमने ऐसा करके गलत किया या सही किया, यह दूसरी बात है, पर जब एक बार शान्ति को साधन मान लिया, तो क्षणिक भावुकता में आकर उस नीति से हटने की कोई बात नहीं उठनी चाहिए।

श्यामा ने कहा—लोगों को इस कारण और भी अधिक निराशा है कि बहुत-से लोग यह समझते रहे हैं कि शान्ति का नारा तो सामयिक है, अन्त में महात्मा गांधी क्रान्ति का नारा देंगे।

आनन्दकुमार ने हंसकर कहा—यह धारणा बिल्कुल गलत है। मैंने जहां तक समझा है, महात्मा जी हिंसा के द्वारा स्वराज्य पाने के बजाय परतंत्र रहना ही पसन्द करेंगे।

श्यामा ने फिर वह आधारभूत तर्क छेड़ा, जिसे केन्द्र बनाकर इन

दिनों आनन्दकुमार के साथ उसकी रोज़ बहस हुआ करती थी। श्यामा कोई क्रान्तिकारिणी नहीं थी, पर वह यह चाहती थी कि गांधी जी अहिंसा की आड़ में जनता को तैयार कर फिर क्रान्ति का नारा दे दें। वह उन्हींके चरणचिह्नों पर चलना चाहती थी, केवल इतना और चाहती थी कि उनके चरण एक विशेष दिशा में चल निकलें।······

जिस प्रकार श्यामा और आनन्दकुमार में बहस हुआ करती थी, उसी प्रकार जेल के अंदर त्रिलोचन की अपने साथियों के साथ बहस होती थी।

अविनाश और रामानंद बराबर यही लिखते रहते थे कि महात्मा जी को अब क्रान्ति का नारा दे देना चाहिए। त्रिलोचन अपनी बारी में इन्हीं बातों को अपनी बैरक में तथा राजनैतिक कैदियों की अन्य बैरकों में जा-जाकर कहता था। इसके फलस्वरूप खूब चिल्ला-चिल्लाकर बहसें होती थीं, यहां तक कि लोग खाना-पीना भूल जाते थे। कई बार मारपीट की नौबत भी आ जाती थी, बड़े-बूढ़े बीच-बचाव करते थे, नहीं तो···

अब राजनैतिक कैदियों की संख्या काफी बढ़ जाने के कारण राजेन्द्र की चमकती हुई नेतागिरी कुछ मद्धिम पड़ गई थी। जेल में और भी कई नेताओं का उदय हुआ था, जिनमें से कइयों के विचार त्रिलोचन से मिलते थे। खूब चहल-पहल रहती थी। जब-तब नारे भी लग जाते थे।

अब एक नया नारा चल पड़ा था—"प्रिंस आफ वेल्स की क्षय।" अभी तक भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में ज़िन्दाबाद, मुर्दाबाद इत्यादि नारे नहीं चले थे। या तो जय होती थी या क्षय। महात्मा गांधी, भारतमाता और कांग्रेस के नेताओं की जय बोली जाती थी और अमन सभा वालों, पुलिस वालों, जेल-अधिकारियों की क्षय बोली जाती थी।

पर घटनाएं किसी बहस तथा जय या क्षय की परवाह बिना किए आगे बढ़ती चली जा रही थीं। बम्बई में महात्मा जी ने जो कुछ किया, उसे देखकर जोशीले देशभक्तों को यह डर लग रहा था कि कहीं महात्मा जी प्रायश्चित्त के ताव में आकर युवराज के बायकाट के सारे कार्यक्रम को रद्द ही न कर दें। घटनाओं की गति देखते हुए इस बात की पूरी आशंका थी।

पर यह अलप टल गई, और युवराज के बायकाट का नारा ज्यों का त्यों चालू रहा। काशी में बराबर सभाएं होती रहती थीं। आनन्दकुमार

अब तक इन सभाओं में नहीं गए थे, पर एक दिन वे अपने-आप ज्ञानवापी में होने वाली एक सभा में पहुंचकर चुपके से श्रोताओं में बैठ गए।

किसीने उनको पहचान लिया कि ये वही महाशय हैं, जिन्होंने राजाओं की उस सभा में बोलकर उसे भंग करवा दिया था।

बस कानाफूसी होने लगी और किसीने आनन्दकुमार की जय का नारा लगा दिया। बाध्य होकर आनन्दकुमार को मंच पर जाकर नेताओं के साथ बैठना पड़ा और वे ही आज की सभा के सभापति चुने गए। अन्त में उनका भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने युवराज के बायकाट की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर बहुत-सी बातें कहीं। लोगों ने कहां तक उनकी बात समझी, यह संदेहास्पद है, पर बीच-बीच में महात्मा गांधी की जय और भारतमाता की जय के नारे लगते रहे, इससे कहा जा सकता है कि उनका भाषण बहुत पसंद किया गया।

अब तो आनन्दकुमार का बुलावा मौके-बेमौके दिन में कई-कई बार होने लगा और वे काशी के राष्ट्रीय आन्दोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता कह लीजिए, नेता कह लीजिए, हो गए।

सबसे मज़े की बात यह है कि जैसे आनन्दकुमार पहले जनता से भागते थे, और अब हर समय जनता के संपर्क में ही बने रहते थे, उसी तरह से उनके भाषण के रूप में भी फर्क आया। पहले वे ऐसे भाषण देते थे, जो विद्वानों के उपयुक्त होते थे। पर अब वे जनता के वक्ता हो चले थे। वे जब बोलते तो बराबर तालियां पिटती थीं और नारे लगते थे। वे अब जनता के अपने नेता बन गए थे।

ज़िला के अधिकारी उनके भाषणों से परेशान थे। जानसन बराबर यह कह रहा था कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाए। पर स्मिथ कहता था कि अभी कुछ दिन और रुका जाए क्योंकि और कुछ भी हो, यह व्यक्ति शान्ति का पुजारी है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

युवराज १२ दिसम्बर को काशी आने वाले थे। एक तरफ राजाओं ने उनके राजसी स्वागत की तैयारी की थी, दूसरी तरफ कांग्रेस ने बायकाट की पूरी तैयारी की थी। न जाने कहां से सारे शहर में सिपाही ही सिपाही भर दिए गए थे। खुफिया पुलिस भी बहुत सावधान थी। एक

दिन पुलिस को यह पता लगा कि गंगा किनारे एक मकान का मालिक सैकड़ों पुराने जूते एकत्र कर चुका है, और उनकी माला तैयार हो रही है, जिसे वह युवराज के नौका-विहार के समय अपने घर के सामने इस प्रकार से लगाने वाला है कि वह युवराज को दूर से नौका-विहार के समय दिखाई दे।

फौरन उस घर पर पुलिस का आक्रमण हुआ। एक साथ तीन सौ सिपाही चढ़ गए। मकान-मालिक ने पहले तो कहा कि मैं पुराने जूतों का व्यापारी हूं, पर जब जिरह में उसकी बात नहीं टिक पाई, तो उसने सीना तानकर कहा—मैं इनकी माला बनाकर अपने घर पर लगाना चाहता हूं, जिससे युवराज को यह मालूम हो जाए कि हम लोग जलियां-वाला कांड और खलीफा के प्रति किए गए अन्याय पर दुखी हैं।

वह आदमी फौरन गिरफ्तार कर लिया गया और उसके सारे पुराने जूते ज़ब्त कर लिए गए। इस बीच में घर के चारों तरफ बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो चुकी थी और उस व्यक्ति का नाम लेकर लोग रामप्रसाद शर्मा की जय का नारा लगा रहे थे।

रामप्रसाद कभी कांग्रेस की सभाओं में नहीं गया था, और न वह खद्दर पहनता था। उसके दिमाग में यह ख्याल एकाएक ही आया था कि पुराने जूतों की माला से युवराज का स्वागत किया जाए।

पर जब उसके घर पर इस प्रकार से हमला हुआ, तो वह एक साहसी सैनिक प्रमाणित हुआ। वह अपनी गिरफ्तारी पर बहुत खुश हुआ और मिस्टर जानसन से बोला—आप मुझे गिरफ्तार कर रहे हैं, कीजिए, पर आपको मेरे जूते लेने का कोई अधिकार नहीं है।

जानसन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। तब उसने कहा—आप किस कानून से मेरे जूते जब्त कर रहे हैं?

जानसन ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया और पुलिस वालों को हुक्म दिया कि जूते बांध लिए जाएं। पुलिस के सिपाही ऊंची जाति के थे, वे गली में जाकर जूते ढोने के लिए कुली बुला लाए।

कुलियों पर पुराने जूतों का हार लाद दिया गया और आगे-आगे हथ-कड़ियों में बंधा हुआ रामप्रसाद शर्मा और पुलिस वाले तथा पीछे-पीछे

जूतों का गट्ठा लिए हुए कुली चले। जनता साथ में नारे लगाते हुए चली।

जब जुलूस कुछ आगे बढ़ा, तो एक मनचले ने एक कुली की पीठ पर लदे हुए जूतों में से एक खींच लिया। बस फिर क्या था, भीड़ गट्ठरों पर टूट पड़ी और एक मिनट में जब तक पुलिस वाले संभल पाएं, सारे जूते गायब हो गए और साथ ही साथ वह भीड़ भी छंट गई। साथ में जूते ढोने वाले कुली भी रफूचक्कर हो गए।

जानसन आग्नेय नेत्रों से जिधर भीड़ लुप्त हो गई थी, उधर देखता रहा। उसे सबसे अधिक क्रोध इसलिए आया कि उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि पुलिस वालों ने अपने कर्तव्य में शिथिलता दिखलाई और उसे यह भी सन्देह हो रहा था कि शायद उनमें से दो-एक मुंह छिपाकर हंस रहे थे।

अगले मोड़ तक फिर वही भीड़ आ गई, पर लोगों के हाथों में जूते नहीं थे। यह स्पष्ट था कि लोग जूते छिपाकर आ गए हैं। जानसन को खून का घूंट पीकर रह जाना पड़ा। रामप्रसाद शर्मा की जय के नारे के साथ कैदी को थाना पहुंचाया गया।

उसी दिन रात को लगभग ११ बजे आनन्दकुमार गिरफ्तार किए जाकर सीधे ज़िला जेल पहुंचाए गए। अब मिस्टर स्मिथ आगे प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं थे। उनके हृदय पर इस बात से सचमुच बहुत चोट लगी थी कि युवराज के कष्ट करने पर भी भारत की परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। तो क्या साम्राज्य का सूर्य अब अस्ताचलगामी था? मिस्टर स्मिथ अन्तिम युद्ध करना चाहते थे।

१९

धीरे-धीरे जेल के राजनैतिक कैदियों में कई नये रिवाज बन गए थे। जो लोग जेल में आते थे, उनका बाकायदा स्वागत किया जाता था और जो लोग छूटकर बाहर जाने को होते थे, उन्हें विदाई दी जाती थी। ऐसे अवसरों के लिए जेल के बागों से फूल लेकर मालाएं बनाई जाती थीं। मानपत्र तथा कविता भी पढ़ी जाती थी। इस प्रकार गद्य तथा पद्य दोनों में दखल रखने वाले लोगों को मौका मिल जाता था।

लोगों के पास बहुत समय था। यद्यपि अधिकांश राजनैतिक कैदी ऐसे थे, जिनको अदालत ने सपरिश्रम कारादण्ड दिया था, फिर भी अधिकारी उनसे परिश्रम कराने की बात सोचते नहीं थे। सच तो यह है कि इस न सोचने के पीछे भी एक बृहत् इतिहास था।

पहले-पहल जेल वालों ने सपरिश्रम कारादण्ड वालों को बरायनाम मूंज भेजी कि वे रस्सी बंटकर दिया करें, पर इन कैदियों ने मूंज जलाकर ताप ली। इसी प्रकार अन्य सब मशक्कतों के साथ हुआ। जिसे चक्की दी गई, उससे इतने ज़ोर से चक्की घुमाई कि चक्की उखड़ गई या लोगों ने मौज में आकर कच्चा गेहूं ही चबा लिया।

इसलिए अब उन्हें कोई काम देने की बात ही नहीं सोचता था।

जेल के कानून तो जैसे के तैसे बने हुए थे, पर उन्हें पालन करवाने की शक्ति जेल-अधिकारियों में नहीं रह गई थी।

इसलिए राजनैतिक कैदी अपनी बैरकों में जो चाहे सो करते रहते थे। कम से कम यह परिस्थिति उन सारी जेलों में थी, जिनमें ऐसे कैदियों की संख्या बहुत हो गई थी।

अधिकारियों की छेड़खानियों से छुट्टी पा जाने पर भी राजनैतिक

कैदियों के सामने यह समस्या बनी रहती थी कि समय किस प्रकार काटा जाए। कुछ लोग पुस्तकें पढ़ते थे, कुछ लोग दंड-बैठक और कुश्ती में समय काटते थे, पर बाकी लोगों के लिए जो न तो मानसिक व्यायाम में ही दिलचस्पी रखते थे न शारीरिक व्यायाम में, ये रिवाज बन गए थे। जेल-जीवन को सरल तथा हितकर बनाने के लिए जेलों के अन्दर कक्षाएं लगती थीं। एक जगह गीता पर व्याख्यान-माला चलती थी, तो दूसरी जगह जोसेफ मेजिनी के 'मनुष्य के कर्तव्य' पर व्याख्यान-माला चलती थी।

इसके अतिरिक्त इन औपचारिक सभाओं से कई काम सिद्ध होते थे। लोगों का नैतिक स्तर ऊंचा बना रहता था और भविष्य के नेताओं को व्याख्यान देने का अभ्यास हो जाता था। इसीलिए ये रिवाज एक बार चालू हो गए तो फिर बंद होने को नहीं आए।

कल त्रिलोचन की रिहाई थी, इसी उपलक्ष्य में सभा हो रही थी। आनन्दकुमार, जो जेल में आते ही बहुत जनप्रिय हो गए थे, इस सभा के सभापति बनाए गए।

त्रिलोचन अपनी रिहाई पर बहुत खुश नहीं था। सच तो यह है कि उसे बराबर इस बात का दुःख बना रहा कि वह ३१ दिसम्बर के पहले छूटने वाला है। इस बीच में उसके विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था, फिर भी उन दिनों महात्मा गांधी पर लोगों को इतना विश्वास था कि अन्दर ही अन्दर उसके मन के एक कोने में यह आशा थी कि शायद निर्दिष्ट तारीख से पहले या उस तारीख को स्वराज्य हो ही जाए।

जब आनन्दकुमार तथा जेल के अन्य नेताओं ने उसे बधाई देते हुए कहा कि त्रिलोचन हम लोगों से कहीं पहले जेल आए हैं, इसलिए उनके सामने हमें बढ़-बढ़कर बातें मारना शोभा नहीं देता, वे हम सबके नमस्य और पूज्य हैं, तो त्रिलोचन फूला नहीं समाया।

उसने भी विगलित होकर कहा—मैं तो यही चाहता था कि मैं स्वतंत्र भारत में ही छूटूं, पर अब जो मैं रिहा हो रहा हूं, उसे मैं अपनी रिहाई नहीं मानता, बल्कि मैं यही समझता हूं कि जब तक स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती तब तक सारा भारत एक बहुत बड़ा जेलखाना है। मैं छूटकर फिर से आन्दोलन में भाग लूंगा।

काफी देर तक सभा चालू रही और बहुत-से लोगों ने भाषण दिए। यहां तक कि अन्त में त्रिलोचन सचमुच रो पड़ा।

आनन्दकुमार अभी नये-नये आए थे, उन्हें इन बातों में बहुत रस मिला। वे बार-बार जिस बात का अनुमान लगा रहे थे, उसे प्रत्यक्ष अनुभव करने का मौका ज़ेल में बराबर आ रहा था। वास्तविक रूप से इस जीवन की सतह बहुत ऊंची थी। हां, यहां भी ईर्ष्या-द्वेष, दूसरे की बड़ाई से दुखी होना आदि बातें थीं, पर वे इतने कम अंश में थीं कि उन्हें कोई महत्त्व देना बेकार था।

इस सभा से सभी लोग सन्तुष्ट होकर गए।

अभी सभा समाप्त ही हुई थी कि त्रिलोचन के पास अविनाश का एक पत्र आया। दूसरे पत्रों से यह कुछ अधिक दीर्घ था। इसमें अविनाश ने लिखा था :

"भाई त्रिलोचन, मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि कल तुम मुक्त हो रहे हो, और अब तुम्हें फिर से देशसेवा करने का मौका मिलेगा।

"मैं फिर तुम्हें उन सारी बातों की याद दिलाना चाहता हूं, जिनपर मैं तुम्हें बराबर लिखता रहा हूं। मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह जानता हूं, शायद उन लोगों से ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूं, जो महात्मा जी के भक्त बनते हैं। महात्मा जी ने हमारे देश में एक नये युग का प्रवर्तन किया है। तुमने जो यह लिखा था कि लोग महात्मा जी को अवतार मान रहे हैं, मैं उनका विरोध नहीं करना चाहता क्योंकि जो अवतार माने गए हैं, वे भी रक्तमांस के मनुष्य थे। और यथा समय वे जरा, मृत्यु के शिकार भी हुए।

"हिंदू धर्म में अवतारवाद का जो सिद्धान्त है, लोग उसके केवल एक पहलू को ही स्मरण रखते हैं कि अवतार मनुष्य रूप में ईश्वर होता है। उसके अन्य पहलुओं को लोग बिल्कुल ही भूल जाते हैं। कृष्ण को ही लो। वे पूर्ण अवतार माने जाते हैं। उन्होंने पाण्डवों को जिताया और कंस, चाणूर, शिशुपाल आदि का वध किया, पर यही कृष्ण जिन्हें लोग अलौकिक-शक्तिसम्पन्न मानते हैं, बाद को चलकर इतने साधारण व्यक्ति हो गए कि उनके रहते हुए उनकी पत्नियों का हरण हुआ, यदुवंश का ध्वंस

हुआ और वे कुछ भी नहीं कर पाए। उनकी मृत्यु भी बहुत मामूली ढंग से हुई।

"सनातन धर्म में इन बातों की व्याख्या और तरह से की जाती है, पर मैं इन बातों से वह परिणाम निकालता हूं कि जब तक कोई नेता युग-धर्म को मूर्त करता है और उसका प्रतीक बना रहता है, तब तक वह दुर्द्धर्ष और अजेय रहता है, उसे तब तक ईश्वर का अंश या ईश्वर जो चाहे सो कहा जा सकता है, पर जब वह अपने युग-धर्म से हट जाता है, तो वह एक साधारण व्यक्ति हो जाता है। मैं तुम्हारे या तुम्हारे मित्रों के विश्वास को आघात पहुंचाने के उद्देश्य से ये बातें नहीं लिख रहा हूं पर मैं यह चाहता हूं कि तुम लोग केवल लीक पीटने वाले न बने रहो। अवतारवाद में विश्वास भले ही करो, पर उसकी सीमाओं को भी समझो। मैंने ये बातें क्यों लिखीं यह मैं स्वयं नहीं जानता, पर पत्रों के द्वारा जो विचार विनिमय हममें चालू रहा उसके उपसंहार के रूप में इन बातों को मैंने लिखा है। मैं कृष्ण का भी भक्त हूं और महात्मा जी का भी, पर मैं युग-धर्म से दृष्टि हटाना नहीं चाहता।

"आनन्दकुमार की जो बातें तुमने लिखी हैं, उससे पता लगता है कि वे मौलिक चिंतन करने वाले व्यक्ति हैं। वे जो कुछ भी कहते हैं, उसमें मैं स्वतंत्र चिंतन का पुट पाता हूं। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि इस समय देश को महात्मा जी तथा छोटे-बड़े बहुत-से ऐसे गांधी मिले हुए हैं, पर देश की भलाई तभी होगी, जब सब लोग अपने-अपने दायरे में खुद भी कुछ सोचेंगे।

"मैं यह स्पष्ट देख रहा हूं कि महात्मा गांधी ने जो जन-आन्दोलन चलाया है, वह आगे चलकर इतना प्रबल हो जाएगा कि अंग्रेजों को देश छोड़कर चला जाना पड़ेगा।

"मैंने तुम्हें पहले पत्रों में लिखा था कि तुम्हें बाहर जाकर अध्ययन करना चाहिए, आशा है कि तुम वैसा करोगे। तुम्हें जेल के अन्दर बहुत-सी बातें मालूम हुईं, पर बाहर और भी बातें मालूम होंगी।

"मैं यह नहीं चाहता कि तुम तुरन्त ही जेल में लौट आओ, पर मैं यह अवश्य चाहता हूं कि तुमसे जितने भी आदमी जेल भेजते बनें, भेजते

जाओ क्योंकि जेल-यात्रा ही एक बहुत बड़ी ट्रेनिंग है। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा जी ने इस रहस्य का पता पा लिया था। पर एक बात कहूंगा कि थोड़े दिनों के लिए ही जेल आने से जेल का पूरा फायदा मिलता है। मुझे छः साल जेल में हो गए। मैंने बहुत कुछ सीखा, उससे अधिक सोचा, पर मेरे इस सीखने और सोचने से क्या फायदा, जबकि मैं बाहर जाकर उसका उपयोग नहीं कर सकता। यह मानना ही पड़ेगा कि महात्मा जी ने यह जो थोड़े-थोड़े दिनों के लिए लोगों को जेल भेजकर ट्रेण्ड करना शुरू किया है, यह एक बहुत बड़ी बात है।"

त्रिलोचन ने यह पत्र पढ़ा, तो उसे यह अनुभव हुआ कि एक तरफ जहां इस पत्र में जोश, त्याग, तपस्या के साथ अविचल निष्ठा बोल रही है, वहीं इस पत्र के अन्त में कहीं निराशा का एक गहरा पुट भी है।

त्रिलोचन ने उसी समय बैठकर एक छोटा-सा पत्र लिखा जिसमें अविनाश और रामानन्द की बहुत प्रशंसा की और यह कहा—इतनी बड़ी भीड़ों में रहकर त्याग करना बहुत आसान है पर आप लोगों ने जब देश का काम करना शुरू किया था, तो वह बहुत अधिक साहस का परिचायक था। इत्यादि···

उस रात को त्रिलोचन बिल्कुल सो नहीं सका, उसके दिमाग में अजीब-अजीब विचार आ रहे थे। कहां वह एक तुच्छ जीव, और उसका तुच्छतर जीवन, पर वह इस समय उस महासंग्राम का अंश बना हुआ था जिससे भारत स्वतन्त्र होगा।

२०

जिस दिन युवराज काशी आए, उसी दिन त्रिलोचन की रिहाई का दिन पड़ा। वह सवेरे-सबेरे जेल के फाटक के पास दफ्तर में पहुंचाया गया। उस दिन जो अन्य मामूली कैदी छूटने वाले थे, वे जेलर के सामने पेश हुए (यों कैदियों की रिहाई सुपरिण्टेण्डेण्ट की वैयक्तिक ज़िम्मेदारी है, पर आज मेजर हार्पर खाली नहीं थे, बंगले से कागज़ात पर दस्तखत कर दिए थे) और छूट भी गए, पर त्रिलोचन को न तो छोड़ा गया और न वापस खिलाफत बैरक ही भेजा गया।

यों त्रिलोचन खुश नहीं था, पर जब उसे मालूम हुआ कि रिहा तो होना ही है, तो उसने अपने मन में एक कार्यक्रम का खाका बना लिया था। न छूटने से वह कार्यक्रम नष्ट हुआ जा रहा था! उसे बहुत बुरा लगा और मंगरू के ज़रिये से, जो इस समय पता नहीं क्या बहाना बनाकर फाटक के पास आया था, उसने अपने साथियों को यह खबर भेज दी कि उसे छोड़ा नहीं गया। बैरकों में लोग नगर में युवराज के आगमन के कारण योंही जोश में थे, अब जो यह खबर मिली तो राजनैतिक कैदियों की बैरकों में बहुत धमाचौकड़ी मच गई और जयकारा लगना शुरू हो गया।

उनकी आवाज़ त्रिलोचन तक पहुंची और यद्यपि वह अकेला था, उसने भी ज़ोर से नारा लगाया। पता नहीं उसकी आवाज़ राजनैतिक कैदियों तक पहुंची अथवा नहीं पहुंची, पर उधर और भी शोर बढ़ गया। रामचन्द्र इस परिस्थिति से पूर्णतः प्रसन्न नहीं था, पर जब उसने देखा कि सब लोग जोश में हैं, तो वह भी सबके साथ नारे लगाने लगा। यद्यपि उस दिन से राजेन्द्र और त्रिलोचन में बातचीत बन्द हो गई थी, पर इस समय राजेन्द्र भी अपनी बैरक के राजनैतिक कैदियों का नेतृत्व करने लगा।

राजनैतिक कैदियों में बड़े-बड़े अद्भुत लोग भी थे। एक ने पता नहीं क्या समझकर जोश में लोहे का तसला आसमान की ओर उछाल दिया, बस फिर तो सब लोग अपना-अपना तसला लेकर यहां तक कि सफाई तथा पहरे आदि के लिए साथ में रहने वाले कैदियों के भी तसले लेकर ऊपर को उछालने लगे।

जमादारों, पक्कों तथा नम्बरदारों की जानकारी में ऐसा भयंकर हंगामा कभी नहीं हुआ था। जो बड़ा जमादार ड्यूटी पर था, उसने समझा कि शायद ये कैदी दीवार फांदना चाहते हैं, बस उसने न आव देखा न ताव, सीटी बजा दी, नम्बरदारों ने घंटा बजाना शुरू कर दिया और पगली हो गई।

यहां यह बता दिया जाए कि अलार्म को जेल की भाषा में पगली कहते हैं। पगली बजते ही जेल के भीतर तथा बाहर जो भी जेल कर्मचारी जिस अवस्था में होता है, वह उसी अवस्था में जेल के अन्दर दौड़ पड़ता है। बाहर से सशस्त्र गारद भीतर पहुंचती है, अड़गड़े बन्द हो जाते हैं, और कैदियों को गिनकर बैरकों में बन्द करने के बाद जब उनका टोटल या सर्वयोग सही निकलता है, तभी पगली बंद होती है। अन्त में तीन घंटियां बजती हैं, जिसका अर्थ यह होता है कि अब सामान्य अवस्था हो गई। तब बैरकें खुल जाती हैं।

कुछ अन्देशा तो पहले से ही था। इस समय जो एकाएक पगली हुई तो जमादारों, नम्बरदारों तथा साधारण कैदियों ने यह समझा कि हो न हो, जेल पर कोई हमला हो गया है। कुछ साधारण कैदी भी अपनी-अपनी बैरकों से महात्मा गांधी की जय और भारतमाता की जय आदि प्रचलित नारे लगाने लगे।

पगली होते ही त्रिलोचन को भी पास की एक बैरक में ले जाकर बंद कर दिया गया। त्रिलोचन वहीं से नारे लगाता रहा। पर जेल का साधारण काम, यानी पगली के समय जो-जो काम होते हैं, वे जारी रहे। जब बैरकें बन्द हो गईं, तो गिनती शुरू हुई। पर गिनती नहीं मिली, यानी सर्वयोग जितना होना चाहिए था, उतना नहीं निकल रहा था।

सबसे अजीब बात यह है कि कैदियों की संख्या में कमी होने के

बजाय बढ़ती हो रही थी।

जेलर खैरातनबी ने बड़े जमादार को डांटते हुए कहा—नौकरी करते हुए इतने साल हो गए, पर आज तक कभी ऐसी स्थिति नहीं आई कि कैदी बढ़ गए हों। जाओ, जल्दी से फिर गिनती कर आओ, ज़रूर कहीं कोई गलती हुई होगी।

पर अगली गिनती में भी एक कैदी बढ़ रहा था। तब खैरातनबी खुद उठा और उसने हर बैरक की गिनती खुद करवाई। तब भी एक कैदी बढ़ा हुआ पाया गया।

इतने में किसीको सूझ गया कि काग़ज़ों में तो त्रिलोचन को छूटा हुआ दिखलाया गया है, पर उसकी गिनती कैदियों में की जा रही है। तब जेलर ने झुंझलाकर नायव से कहा—यह क्या तमाशा है?

नायब ने बताया—हुज़ूर, आज सबेरे पुलिस वालों से यह हिदायत आई थी कि ऐसे ही उन्हें बड़ी आफत है, आज के दिन कोई राजनैतिक कैदी छोड़ा न जाए···

तव जेलर का मिज़ाज ठण्डा पड़ा और उसके नायब के कान में कोई बात कही। नतीजा यह हुआ कि जब संध्या समय बैरक बन्दी का मौका आया, तब त्रिलोचन को जेल से बाहर कर दिया गया। इसकी खबर जेल के अन्दर राजनैतिक कैदियों में पहुंची और उसे उन लोगों ने अपनी विजय जानकर यथारीति नारे लगाने शुरू किए।

जब त्रिलोचन शहर पहुंचा, तो युवराज के स्वागत का असली समारोह समाप्त हो चुका था। वह मन मारकर जेल वालों और पुलिस वालों को गालियां देता हुआ घर पहुंचा।

युवराज के बम्बई उतरते ही साम्राज्य के नेताओं के निकट यह स्पष्ट हो चुका था कि राजदर्शन का विशेष कोई लाभ नहीं रहा, बल्कि इससे लोगों की विद्रोह-भावना को और एक उत्तेजन मिला। तब साम्राज्य के नेताओं को बड़ी चिन्ता हुई और वे यही सोचने लगे कि किस प्रकार से आन्दोलन का सामना किया जाए।

मिस्टर स्मिथ ने अब हिन्दू और मुसलमान नेताओं को अलग-अलग बुलाना शुरू किया। यहां नेताओं से मतलब सरकार के खैरख़्वाहों से है।

उन्होंने पहले खानसाहब मुंशी इबादत हुसैन के नेतृत्व में मुसलमान अमन-सभाइयों को बुलाया। फिर बोले—मुझे यह पता लगाना है कि आप लोग भारत की आयन्दा सरकार के बारे में क्या सोच रहे हैं ?

मुंशी साहब बहुत अच्छे फौजदारी वकील थे और इनकी जिरह के सामने बड़े-बड़े धाकड़ गवाहों के पैर उखड़ जाते थे, पर मिस्टर स्मिथ के सामने वे भीगी बिल्ली बने हुए थे। मैं-मैं करते हुए बोले—हम लोगों ने तो यही सोचा है कि ब्रिटिश राज्य का साया हमपर बना रहेगा, फिर हमें किस बात की फिक्र है ? यह आंधी तो थोड़े दिनों में खत्म हो जाएगी।

मिस्टर स्मिथ ने कहा—हमें आंधी की कोई फिक्र नहीं है। हमने जर्मन कैसर के छक्के छुड़ा दिए, तो हम गांधी से नहीं डरते। पर हम यह साफ कर देना चाहते हैं कि हम अंग्रेज़ बड़े भावुक लोग हैं। हम सब कुछ बर्दाश्त कर सकते हैं, पर राजा के प्रति किया हुआ अपमान हम बिल्कुल सह नहीं सकते और सारे भारत में युवराज के आने पर जो कुछ हुआ, वह यदि अपमान नहीं तो अपमान के दर्जे का ज़रूर है। इसपर बहुत-से समझदार अंग्रेज़ झुंझलाकर यह नारा दे रहे हैं कि हिन्दुस्तान में हमारा मकसद सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करना रहा, और यहां के लोग इसके लिए कृतज्ञ नहीं हैं, तो हमें भारत छोड़ देना चाहिए, इसके नतीजे में चाहे हमारा बना-बनाया सारा काम बिगड़ जाए और आपस में मार-काट करने की वजह से मुल्क तबाह हो जाए।

मुंशी इबादत हुसैन ने कहा—यह कैसे हो सकता है ? हम तो उस हालत की बात सोच ही नहीं सकते कि अंग्रेज़ यहां से चले जाएंगे। हम मुसलमान हिन्दू अकसरियत के मातहत नहीं रह सकते और सुराज का मतलब तो हिन्दू राज होगा।

—पर इसे आम मुसलमान कहां समझ रहे हैं। जेलों में इस वक्त जहां हज़ारों हिन्दू पड़े हुए हैं, वहां हज़ारों मुसलमान भी हैं।

इबादत हुसैन कुछ झेंपते हुए, मानो यह उन्हींका कसूर हो, बोले—खिलाफत के नाम पर मुसलमान जेल जा रहे हैं। सच पूछिए तो सुराज से न तो उन्हें कोई वास्ता है और न हमें ही।

मिस्टर स्मिथ बोले—यह तो आप कह रहे हैं, पर आम मुसलमान ऐसा नहीं सोचता। क्या यह आपका फ़र्ज़ नहीं है कि आप आम मुसलमानों को समझाएं।

अब तक मंजर अली जो इबादत हुसैन के जोड़ के ही वकील थे चुप बैठे थे, बोले—हुज़ूर, बात यह है कि मुहम्मदअली, शौक़तअली और उलमा उन्हें बहका रहे हैं, फिर हमारी बात कौन सुनता है?

मिस्टर स्मिथ इस पराजयवादी मनोवृत्ति का विरोध करते हुए बोले—मैं तो समझता हूं कि इस वक्त लोग भले ही गुमराह हो रहे हों, वे जल्दी ही राह-रास्ते पर आ जाएंगे। अगर आप लोग समझाना शुरू करें कि सुराज में मुसलमानों की क्या हालत होगी, तो थोड़े दिनों में लोगों का जोश ठण्डा पड़ जाएगा।

इसी प्रकार कभी खुलकर और कभी परोक्ष रूप से मिस्टर स्मिथ वह बीज बोते रहे जिसकी फसल पर हमेशा विदेशी शासकों ने भरोसा किया है। उन्होंने आए हुए मुस्लिम नेताओं को यह अच्छी तरह समझा दिया कि उनके लिए स्वराज्य का अर्थ हिन्दुओं की गुलामी है। मिस्टर स्मिथ जानते थे कि जो लोग आए थे वे लोग बहुत ही सुस्त और काहिल हों, उनके किए-कराए कुछ नहीं होगा, उनमें बीज बोना पत्थर के बीज बोने के ही बराबर है, पर मिस्टर स्मिथ अपने ढंग के मिशनरी थे, उन्होंने यह कष्ट इसलिए किया कि शायद भूल से बीज ऐसी ज़मीन पर गिरे, जिसमें से अंकुर निकले और आगे चलकर वह पुष्पित और पल्लवित हो। ब्रिटिश साम्राज्य के बहुत बुरे दिन जा रहे थे। जैसे बहुत-से कांग्रेस-भक्त बल्कि देशभक्त यह समझते थे कि ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य हो जाएगा, उसी तरह कुछ अंग्रेज़ भी रंग-ढंग से यही नतीजा निकाल रहे थे कि अब ब्रिटिश शासन के दिन इने-गिने हैं।

जिस प्रकार मिस्टर स्मिथ ने मुसलमानों को बुलाकर उन्हें भड़काया, उसी प्रकार उन्होंने हिन्दुओं को बुलाकर उन्हें भी भड़काया। उनसे कहा—यद्यपि आप लोग बहुसंख्या में हैं, पर मुसलमानों को एक सुविधा है जो आपको नहीं है। तुर्की से लेकर जावा, सुमात्रा, इण्डोनेशिया तक मुसलमान हैं, और उन सबकी मदद से भारत में फिर से मुस्लिम शासन

कायम करना असम्भव नहीं। एक भी मुसलमान स्वराज्य के लिए जेल नहीं गया है, वह खिलाफत के लिए गया है, और खिलाफत क्या है कि पैन इस्लामिज़्म का ही छिपा हुआ रूप है। खलीफा के नाम पर ही सारे मुसलमान एक किए जा सकते हैं और वही हो रहा है। ऐसी हालत में आप सोच लें...

इन बातों का प्रभाव पड़ता था। लोग सभाओं में यह बात तो नहीं कहते थे, पर कानाफूसी में ऐसी बातों का प्रचार होता था और कुछ मुसलमानों के व्यवहार से इसका समर्थन भी होता था। हिन्दुओं में गांधी टोपी चली थी तो मुसलमानों में तुर्की टोपी का अधिक प्रचार हो रहा था। अल्लाहो अकबर का नारा सभी सभाओं और जुलूसों में लगता था। यद्यपि यह उसी प्रकार का नारा था जैसे भगवान रामचन्द्र की जय या भगवान कृष्णचन्द्र की जय।

इस प्रकार इस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उठती हुई भारतीय राष्ट्रीयता में बहुत भयंकर युद्ध जारी था। साम्राज्यवाद की पीठ दीवार से लग चुकी थी, फिर भी वह अपने सैकड़ों फनों से फुफकारकर बड़े ज़ोर का हमला कर रहा था। हमारे राष्ट्रीय जीवन की न जाने किन-किन नसों में उसका विष लहरा रहा था। ऊपर से कुछ परिणाम नहीं मालूम हो रहा था, इसका कारण यह था कि लड़ाई तेज़ी पर थी।

जब कोई वस्तु गतिशील होती है, तो वह एक पहिये पर भी चल सकती है, पर गति घटते ही उसका सन्तुलन समाप्त हो जाता है और वह लड़खड़ाकर गिर पड़ती है। इन दिनों एक से एक बड़े नेता गिरफ्तार होते जाते थे। जब-तब देश-भर में हड़तालें हुआ करती थीं। ये हड़तालें बहुत ही सफल होती थीं। जिधर देखो उधर, जब देखो तब जुलूसों और सभाओं का तांता लगा हुआ था। लड़के भी खेल खेलते थे, तो एक पुलिस बनता था तो दूसरा झण्डा उठाने वाला या नारा देने वाला कांग्रेसी और अन्त में जीत कांग्रेस की ही होती थी, पुलिस वाला भी झण्डा उठाने या नारा लगाने वालों में शामिल हो जाता था।

पर वास्तविक जीवन की घटनाएं इतनी आसानी से सुलझ नहीं रही थीं फिर भी अजीब-अजीब बातें हो रही थीं। एक दिन मिस्टर जानसन

ने आकर मिस्टर स्मिथ से कहा—मेरा खानसामा काम छोड़कर चला गया, फिर भी किसी तरह काम चल रहा था, पर आज दोनों भंगी भी चले गए। उन्हें बहुत समझाया, तनख्वाह बढ़ाने का वायदा किया, पर वे नहीं माने। बोले, "साहब ! हम तो करना चाहते हैं, पर बिरादरी में हम कैसे मुंह दिखाएं। पंचों ने यह हुक्म दिया है कि अंग्रेज़ की जो नौकरी करेगा, उसका हुक्का-पानी बन्द।"

स्वयं मिस्टर स्मिथ पर यह बात बीत चुकी थी। उन्होंने लन्दन मिशन या पता नहीं कौन-से मिशन से ईसाई भंगी मंगा लिए थे। अब उन्हींमें से एक को मिस्टर जानसन के घर भेजा गया।

यह तो हुआ। पर जानसन ने कहा—मिस्टर स्मिथ, आप तो विद्वान भी हैं, मैं तो सिर्फ एक सैनिक हूं, यह बताइए कि आखिर होने क्या जा रहा है ? मैं मैसोपोटेमिया में लड़ा, फ्रांस में लड़ा, जर्मनी में लड़ा, पर ऐसी आफत का सामना कभी कहीं नहीं हुआ था। रात को नींद नहीं आती कि जाने कब अपने ही आदमी गले पर छुरी चला दें। १८५७ में भी तो ऐसा ही हुआ था, जो कल तक मातहत और दोस्त थे, वे एकाएक शत्रु बन गए। मैं तो सोच रहा हूं कि अपना परिवार इंग्लैण्ड भेज दूं।

मिस्टर स्मिथ ने कुछ दुःखी होकर कहा—इसमें सन्देह नहीं कि स्थिति कुछ गम्भीर है, पर घबराने की कोई बात नहीं है। मेरा विश्वास है कि जोश की जिस ऊंचाई पर इस समय आन्दोलन है, उसके दो ही परिणाम हो सकते हैं, एक तो यह कि अब यह लड़ाई अहिंसात्मक नहीं रह पाएगी और यह मारकाट का रूप धारण कर लेगी, जिस हालत में हम इसे आसानी से दबा लेंगे। दूसरी बात यह हो सकती है कि आन्दोलन प्रकृति के नियम के अनुसार अब नीचे की ओर जाएगा।

जानसन बोला—माफ कीजिए, मुझे ब्रिटिश सरकार की नीति कुछ समझ में नहीं आती। छोटे-मोटे वालण्टीयर, ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे अब गिरफ्तार हो रहे हैं, पर गांधी जो सारी खुराफात की जड़ है,वह स्वतन्त्र रूप से फिर रहा है, रोज़ वह एक न एक गुल खिलाता है। उसे गिरफ्तार क्यों नहीं किया जाता ?

मिस्टर स्मिथ ने कहा—गांधी को गिरफ्तार करना 'वायसराय' की

भी शक्ति के बाहर है। लन्दन के हुक्म पर ही वह गिरफ्तार किया जा सकता है। अभी वह इसीलिए गिरफ्तार नहीं किया जा रहा है कि उसके गिरफ्तार होने से हंगामा मच सकता है।

—अभी तो आप कह रहे थे कि मारकाट होने से हम आसानी से आन्दोलन को दबा देंगे।

—हां, मारकाट या साधारण हंगामा को दबाने की शक्ति तो हममें है, पर गांधी के गिरफ्तार किए जाने पर क्रान्ति का खतरा है, जिसे दबाना टेढ़ी खीर है।

जानसन ने जमुहाई लेते हुए कहा—यह सब ऊंची राजनीति मेरी समझ में नहीं आती। मैं तो यही समझता हूं कि जो सबसे बड़ा दोषी है, उसे जेल के बाहर रखकर छोटे-छोटे लोगों को पकड़ना कोई विशेष लाभकारी नहीं हो सकता।

वह उठते हुए बोला—आपने मुझे यह कहा था कि मैं रायबहादुर वंशीधर की लड़की के विषय में आपको सूचना देता रहूं। सो खबर यह है कि जिस दिन आनन्दकुमार गिरफ्तार किए गए, उसी दिन श्यामा उनका घर छोड़कर चली गई, तब से उसका ठीक-ठीक पता नहीं मिल पाया।

२१

जब रूपवती आनन्दकुमार से मिलने के लिए जेल में गई तो आनन्दकुमार ने इधर-उधर की बातों के बाद पूछा—मैं श्यामा को नहीं देख रहा हूं। वह तुम्हारे साथ नहीं आई ?

रूपवती का हृदय बड़े ज़ोर से धड़का, पर संभलकर बोली—वह तो उसी दिन चली गई, जिस दिन आप गिरफ्तार हो गए।

आनन्दकुमार ने इसपर कोई विशेष आश्चर्य नहीं प्रकट किया। उन्होंने विषय ही बदल दिया, पर रूपवती श्यामा के विषय में अपनी सफाई देना चाहती थी, बोली—आप विश्वास करें, मैंने श्यामा से कुछ भी नहीं कहा, वह स्वयं एक तरह से मुझसे बिना कुछ कहे चली गई।

आनन्दकुमार अब की बार बोले—उसे तो तुम्हींने बुलाया था, पर पता नहीं कैसे अब की बार जब से वह जानसन की कैद से छूटकर आई, तब से तुम्हारे और उसके बीच में मन-मुटाव बढ़ता ही गया और अन्त में वह चली ही गई।

कहकर आनन्दकुमार जेल की ऊंची-ऊंची दीवारों की तरफ देखते हुए बोले—मैं इसके लिए किसीको दोषी नहीं समझता। तुमने उसे बुलाया अच्छा किया; वह चली गई, यह भी शायद अच्छा ही हुआ, पर मुझे दुःख तो यह है कि शायद उसका जीवन नष्ट हो गया।

—क्यों ? क्यों ?—रूपवती ने घबराहट में कहा—जीवन नष्ट कैसे हो गया ?

—जिस कारण से तुम उसे फिर एक साधारण स्त्री के रूप में देख नहीं सकीं, मुझे ऐसा लगता है कि उसी कारण से राजेन्द्र भी उससे दूर हो गया है।

दोनों कुछ देर तक एक-दूसरे से कुछ नहीं बोले । इस विषय पर और बातें करना दोनों के लिए विभिन्न कारणों से अप्रिय था ।

रूपवती ने मौन भंग करते हुए कहा—त्रिलोचन नाम का एक आदमी बाद को आकर श्यामा की बची-खुची चीज़ें ले गया । मैंने उसे कभी देखा नहीं था, पर मालूम हुआ कि वह हाल ही में जेल से छूटा है ।

आनन्दकुमार ने याद करने की चेष्टा की कि त्रिलोचन कौन है, फिर उन्हें याद आया कि उसकी मुक्ति पर बड़े झंझट हुए थे । उन्होंने कहा—तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है । वह तो अच्छे लोगों के साथ ही है, ऐसा मालूम होता है···

कुछ देर रुककर वे बोले—अजीब बात है कि संसार में जितने भी बड़े परिवर्तन होते हैं, उनके दौरान में बहुत-से ऐसे लोगों को कष्ट मिलता है, जिन्हें कष्ट न मिलता, तो कुछ बिगड़ नहीं जाता । आश्चर्य है कि मेरे ऐसे लोगों को कष्ट कम मिलता है, जिन्हें कष्ट मिलता तो कुछ परवाह नहीं थी ।

आनन्दकुमार के इन उद्गारों में कितना दर्द छिपा था, यह रूपवती समझ गई । बोली—मैं उसका पता लगाने की चेष्टा करूंगी और मुझसे जो कुछ भी बन पड़ेगा, करूंगी···

अब तक आनन्दकुमार बिल्कुल साधारण रूप से बात कर रहे थे, पर ये शब्द सुनते ही वे जैसे बौखला गए । बोले—नहीं, नहीं, तुम उसकी तलाश मत करो । वह और कुछ भी हो, दया की पात्री नहीं है । दया के पात्र वे लोग हैं जो त्याग की कद्र नहीं समझते ।

वे इतना ही कह पाए थे कि मुलाकात का समय समाप्त हो गया और किसी नतीजे पर बिना पहुंचे ही रूपवती को आनन्दकुमार से विदा होना पड़ा ।

जेल के अन्दर अपनी बैरक में जाकर आनन्दकुमार ने राजेन्द्र से कहा—उसी रात को जब मैं गिरफ्तार हुआ श्यामा मेरा घर छोड़कर चली गई ।

राजेन्द्र को यह बात मालूम नहीं थी, उसे बड़ा आश्चर्य और कुछ घबराहट भी हुई । बोला—संभव है कि वह अपने घर चली गई हो ।

ग्रानन्दकुमार ने इस प्रकार चिन्ता दूर करने वाली ग्रात्मप्रवंचनापूर्ण ग्रटकल का ज़ोरों के साथ विरोध करते हुए कहा—मैं जहां तक उस लड़की को जान पाया हूं, वह कभी ग्रपने घर नहीं जाएगी, चाहे इसपर कुछ भी हो जाए।

राजेन्द्र के मुंह पर जैसे थप्पड़-सा लगा, बोला—फिर वह कहां गई ?

—वह ग्रपने ही तरह के विचारों वाले किसीके पास गई होगी। वह बड़े उग्र विचारों की है, संभव है कि वह ग्रपने ही ढंग के लोगों के पास गई हो।

—पर यह तो कोई ग्रच्छी बात नहीं है। ग्राखिर वह एक स्त्री ही है, उसे समझ-बूझकर चलना चाहिए था।

ग्रानन्दकुमार ऐसे उत्तर के लिए बिल्कुल तैयार न हों, ऐसी बात नहीं, फिर भी जब उन्होंने यह उत्तर सुना तो वे बहुत नाराज़ हो गए। बड़ी कठिनाई से उन्होंने ग्रपने को संभाला। हंसकर बोले—हम लोग कौन होते हैं यह बात कहने वाले ? यों तो हम लोगों के विषय में भी बहुत-से लोग ऐसी बातें कहते हैं, उदाहरणस्वरूप तुम्हारे पिता जी तुम्हारे उचित विचारों के सम्बन्ध में जो धारणा रखते हैं, क्या तुम उनपर चलने के लिए तैयार हो ? फिर हमें क्या ग्रधिकार है कि हम दूसरों के सम्बन्ध में ऐसे विचार लेकर चलें ?

वे ग्रौर भी बहुत कुछ कहना चाहते थे, पर रुक गए। राजेन्द्र ने पता नहीं झेंपकर या महज़ एक तर्क देने के लिए कहा—ग्राज २० दिसम्बर है। ग्रब महज़ ११ दिन रहे, उसके बाद तो स्वराज्य हो ही जाना है, फिर श्यामा को बेकार के झगड़ों में पड़ने की ज़रूरत क्या थी ?

ग्रानन्दकुमार ग्रौर राजेन्द्र बैरक के एक कोने में धीरे-धीरे बात कर रहे थे, पर इस बात से ग्रानन्दकुमार इतने तैश में ग्रा गए कि सहसा चीखकर बोले—मैं कसम खाकर कहता हूं कि ३१ दिसम्बर की ग्राधी रात को स्वराज्य नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा !

फौरन बैरक के सब राजनैतिक कैदी वहां ग्रा गए, ग्रौर वे ऐसे मुंह बनाकर ग्रानन्दकुमार को देखने लगे मानो वे सहसा पागल हो गए हों।

इतने लोगों की सम्मिलित दृष्टि के सामने आनन्दकुमार को यह होश आ गया कि उन्होंने एक अजीब बात कह दी, पर इससे संभलने की बजाय उनपर जनून और अधिक सवार हो गया। बोले—तुम लोग गधे हो, बेवकूफ हो, कायर हो, जो यह समझकर स्वतन्त्रता-संग्राम में कूदे हो कि इतनी आसानी से स्वराज्य मिल जाएगा।

राजेन्द्र उनसे मन ही मन काफी असंतुष्ट था, और इस समय तो उसी-को उपलक्ष्य बनाकर वे चीख पड़े थे। इसलिए वह चीख का जवाब चीख में देकर बोला—तो क्या महात्मा जी झूठे हैं जो उन्होंने ऐसा कहा ?

यद्यपि राजेन्द्र ने ही यह प्रश्न पूछा था, पर यह प्रश्न केवल राजेन्द्र का ही नहीं था, यह आनन्दकुमार को उनपर लगी हुई एक हद तक डरी हुई और बौखलाई हुई दृष्टियों से ही पता लग गया। वे पहले के मुकाबले में शान्त होकर बोले—महात्मा जी ने जो कुछ कहा वह सही कहा, पर तुम लोगों में उन्हें समझने का माद्दा नहीं है। तुम सैकड़ों वर्षों के रोगी हो, तुममें से अपने नीरोग होने के सम्बन्ध में विश्वास बिल्कुल ही जाता रहा था, इसलिए किसी भी चिकित्सक का पहला काम यह था कि वह तुममें विश्वास पैदा करे, तभी तुम्हारी चिकित्सा हो सकती थी।

कहकर आनन्दकुमार कुछ रुके, फिर सोचकर मानो किसी सभा में बोल रहे हों, बोले—एक रोगी से जो जीवन और मृत्यु की चौखट पर खड़ा है, कोई अच्छा चिकित्सक यह नहीं कहेगा कि तू किसी भी क्षण टें बोल सकता है। वह तो हर हालत में अपने रोगी में विश्वास के दीये को प्रज्वलित रखने की चेष्टा करेगा, क्योंकि किसी भी दवा के कारगर होने की एक शर्त यह भी है कि विश्वास का दीपक बुझने न पाए। उसके बिना सब दवा-दारू व्यर्थ होगी।

आनन्दकुमार की ये बातें इतनी अद्भुत थीं कि सब लोग निरुत्तर रह गए मानो उनपर किसी दिशा से हमला हुआ हो जिसकी कोई आशा नहीं थी। आनन्दकुमार रुके, मानो उन्होंने यह देख लिया कि उनकी बातों का कितना असर हुआ, फिर वे बोले—जब डाक्टर रोगी से यह कहता है कि तुम अच्छे हो जाओगे, तो उसका उद्देश्य अच्छा होता है, केवल यही

बात नहीं वह इस प्रकार ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करने में सहायक होता है, जो रोगी को रोगमुक्त करने के लिए ज़रूरी हैं। सम्भव है कि रोगी मर जाए, पर इसके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि डाक्टर ने असत्य भाषण किया। सत्य भी कई तरह के होते हैं। जो सत्य जितना बड़ा होता है, वह उतना ही जटिल होता है।…

आनन्दकुमार की बातों को बीच में काटकर रामचन्द्र ने कहा—मान लीजिए कि आप जो कह रहे हैं वह सच है, और ३१ दिसम्बर की आधी रात तक स्वराज्य नहीं होता, तब क्या होगा।

आनन्दकुमार ने कहा—३१ दिसम्बर की आधी रात तक हम इतने खड़े हो चुके होंगे कि हमें किसी प्रकार की सान्त्वना की ज़रूरत नहीं रहेगी। फिर यदि हमें स्वतन्त्रता के लिए सौ वर्ष भी लड़ना पड़े, तो हम विचलित नहीं होंगे। जब रोगी का संकट दूर हो जाता है और रोगी सही दिमाग होता है, तो उससे यह कहा जा सकता है, "भई इलाज में कुछ दिन लगेंगे।" बुद्धिमान रोगी इससे घबराएगा नहीं बल्कि भरपूर ताकत से इलाज कराएगा और डाक्टर के काम में हाथ बटाएगा।

पर राजेन्द्र या रामचन्द्र आनन्दकुमार की व्याख्या को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनको एक भयंकर धक्का-सा लगा। साथ ही भीतरी मन ने कहा, 'कहीं ये जो कह रहे हैं, वह सच न हो।' पर ऊपरी मन ने भीतरी मन की इस आवाज़ को सुनने से इनकार किया क्योंकि यह आवाज़ बड़ी अप्रिय थी।

इस समय तक दूसरी बैरकों के राजनीतिक कैदी भी वहां आ चुके थे और लगभग तीन सौ व्यक्तियों की भीड़ उस बैरक के अन्दर और बाहर जमा हो चुकी थी। कानोंकान आनन्दकुमार ने जो बातें कही थीं, वे सबमें फैल गईं। उसी समय अहाते के अन्दर के एक पुराने पेड़ के नीचे चबूतरे पर एक दरी बिछा दी गई। जो दो-चार स्थानीय नेता तथा वयोवृद्ध लोग थे, उसपर बैठे, बाकी लोग ज़मीन पर बैठ गए और सभा शुरू हो गई।

इस समय तक जेल के अनुशासन की धज्जियां उड़ चुकी थीं। राजनीतिक कैदी केवल जेलों में रहते-भर थे। न कैदी और हवालाती में कोई

फर्क था और न महज़ कैद और सख्त कैद में । जब मौज आती थी, लोग नारे लगाते थे और जब इच्छा होती थी तब सभा होती थी। कई बार मनोरंजन के लिए मुशायरे तथा इस प्रकार के अन्य समारोह भी होते थे। जेल वाले इस सम्बन्ध में निश्चिंत थे कि कोई भागेगा नहीं, इसलिए वे परवाह नहीं करते थे। पर उनके मुख़बिर सारी महत्त्वपूर्ण बातों की खबर खैरातनबी को पहुंचाते रहते थे। इन दिनों लोग माफी भी कम मांगते थे।

जो सभा हुई उसमें सबने यह मत प्रकट किया कि अभी-अभी आनन्द-कुमार ने जो बात कही है, वह गलत है। हम लोगों को पूरा विश्वास है है कि ३१ दिसम्बर की आधी रात तक स्वराज्य होगा क्योंकि महात्मा जी ने जो शर्तें रखी थीं, वे पूरी हो गईं।

आनन्दकुमार अपने स्थान पर बैठकर सभा में होने वाले सारे व्याख्यानों को सुनते रहे। उन गरम-गरम व्याख्यानों को सुनकर उसके मन में एक आध बार यह संदेह आया कि कहीं उन्होंने अज्ञानवश गलत व्याख्या तो नहीं कर डाली। पर उन्हें इस बात में बड़ा मज़ा आ रहा था कि इस समय वे अकेले, बिल्कुल अकेले हैं। क्या वे महात्मा जी की वाणी के असली रहस्य को समझ पाए हैं या···

जब खैरातनबी को यह खबर मिली तो वह दौड़ा-दौड़ा जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट मेजर हार्पर के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। हार्पर ने कहा—क्या लोगों ने भाषणों में आनन्दकुमार के विरुद्ध बहुत-सी बातें कहीं ?

—हां ; एक ने तो उन्हें जुडास तक कह डाला। क्या मैं आनन्द-कुमार को अलग कोठरी में रख दूं ?

—क्या उसकी जिन्दगी के लिए खतरा है ?

फिर मेजर हार्पर ने आंख मारते हुए कहा—पिटने दीजिए। इस आदमी ने बहुत खुराफात की है। अपने आदमियों के हाथ से पिटेगा तो एक पंथ दो काज बनेंगे। कोई हमें दोष भी न देगा और साथ ही उस पाजी की मरम्मत भी हो जाएगी। पर इतना खयाल रखिएगा कि लोग उसे जान से न मार डालें···

मेजर हार्पर उसी समय मोटर लेकर मिस्टर स्मिथ के पास पहुंचा और उन्हें सारी खबर सुनाई। मिस्टर स्मिथ सुनकर पहले तो खुश हुए, पर फौरन ही बोले—यह अच्छा नहीं हुआ। आनन्दकुमार यह कहकर नक्कू तो बन गया, उसे व्यक्तिगत रूप से हानि पहुंची, पर उसने लोगों को एक अप्रिय तथ्य के लिए तैयार कर दिया। मैं यह हिसाब लगा रहा था कि यदि १९२२ आ गया और स्वराज्य नहीं मिला तो कुछ लोग, जो केवल इसी विश्वास पर टंगे हैं. माफी मांगकर चले जाएंगे, पर अब इस व्यक्ति ने कम से कम इस जेल में उसका रास्ता बन्द कर दिया। यह लोगों में बदनाम तो हो गया, पर इसने हमें बहुत भारी हानि पहुंचा दी। दूसरी बार इसने हमें भारी शिकस्त दी।

२२

जेलें ठसाठस भर चुकी थीं । भीतर-भीतर कुछ समझौते की बात-चीत जारी थी, पर आम लोगों को उसका कुछ पता नहीं था। प्रतिदिन नई गिरफ्तारियां होती थीं और नये-नये लोग जेलों में आते थे। जो लोग आते थे वे जोश से भरे होते थे। आने वालों में मुसलमानों की अच्छी-खासी संख्या थी। सब तरह के लोग जेलों में आ रहे थे।

जेल में चलने वाली कक्षाओं के लिए आनन्दकुमार बहुत उपयोगी हो सकते थे पर उस दिन उन्होंने जो बातें कही थीं, उनके कारण लोगों ने उनका बायकाट-सा कर रखा था। पहले दो-एक दिन यह बायकाट कुछ उग्र था, पर धीरे-धीरे वह उग्रता जाती रही। लोगों को शायद भीतर ही भीतर यह विश्वास होता जा रहा था कि सम्भव है यह व्यक्ति सही निकल जाए।

नेतागण आनन्दकुमार से जब-तब बात भी कर लेते थे, पर उन बातों में एक तरफ जहां विद्वेष का अभाव होता था, वहीं उनमें कोई हार्दिकता भी नहीं होती थी। इसके कई कारण थे। सबसे प्रधान कारण तो यह था यदि उस दिन आनन्दकुमार के मुंह से यह बात नहीं निकल जाती, तो वे ही सब राजनैतिक कैदियों के नेता होते इसलिए अब नेतागिरी से खारिज कर दिए जाने के कारण इन नेताओं को कोई विशेष दुःख नहीं था।

इन्हीं दिनों अहमदाबाद कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसकी खबर जेलों में पहुंची। यों तो अधिकतर लोग पहले तिकड़म के विरुद्ध थे पर बाद में सबने देख लिया कि और कुछ नहीं तो अपना तथा अपने साथियों का मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए बाहर से अखबार मंगाना

बहुत ज़रूरी है। इसलिए अब अखबार चोरी से मंगाए जाते थे, और उन्हें नेता किस्म के लोगों में घुमाया जाता था।

अहमदाबाद अधिवेशन की कुछ खबरें बड़ी अजीब थीं, जो लोगों की समझ में नहीं आईं।

कांग्रेस में भारत हितैषी पादरी प्रवर श्री सी० ऐफ० ऐण्ड्रूज़ को एक धार्मिक सन्देश देने की अनुमति दी गई। यह सन्देश सुन्दर था और महात्मा जी के विचारों के अनुरूप ही था। पर जिस बात से सब राजनैतिक कैदियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, वह यह थी कि श्री ऐण्ड्रूज़ यों तो भारतीय पोशाक पहना करते थे, पर इस अवसर पर वे जान-बूझकर पाश्चात्य पोशाक में आए थे।

बात यह थी, यद्यपि श्री ऐण्ड्रूज़ कवीन्द्र रवीन्द्र और महात्मा गांधी के विचारों से बहुत प्रभावित थे, पर वे महात्मा जी के विदेशी वस्त्र जलाने की नीति के घोर विरोधी थे। उनका कहना था कि विदेशी वस्त्र जलाना हिंसा के दायरे में आ जाता है।

उस अवसर पर श्री ऐण्ड्रूज़ केवल पाश्चात्य पोशाक ही नहीं, विदेशी वस्त्र भी पहने हुए थे। इसपर राजनैतिक कैदियों में बड़ा तर्क-वितर्क हुआ। भगवतीचरण उर्फ नवम्बर राजेन्द्र के साथ जेल में आया था, और उसे सजा भी उसीके साथ हुई थी, पर वह जेल में आते ही बुरी तरह त्रिलोचन के प्रभाव में आ गया था। लोग कहते थे और राजेन्द्र भी यही समझता था कि इसका कारण उसकी खैनी खाने की आदत है।

श्री ऐण्ड्रूज़ के सम्बन्ध में भगवतीचरण ने कहा—ऐसे आदमी को तो कांग्रेस के अन्दर घुसने नहीं देना चाहिए था। चाहे वह कोई भी हो…

राजेन्द्र तथा अन्य लोगों ने कहा—महात्मा जी ने जब सब कुछ जानते हुए उन्हें कांग्रेस के अधिवेशन में आकर वक्तव्य देने की अनुमति दी, तब इसमें कोई राज़ अवश्य होगा।

नवम्बर (उसे सब साथी नवम्बर ही कहते थे और वह इसपर अपने को बहुत गौरवान्वित अनुभव करता था) बोला—यह भी तो हो सकता है कि उसने महात्मा जी की मित्रता का अनुचित लाभ उठाया। आखिर

वह अंग्रेज़ ही है। उसे यह कैसे सहन होता कि मैनचेस्टर और लंकाशायर के लोग भूखों मरें।

इसपर बाबू रघुवंशनाथ ने नवम्बर को बड़े ज़ोर से डांटा।

बात वहीं तक रह गई। नवम्बर ने मंगरू के पास जाकर खैनी बनवाकर खाई और एक दिन तक किसीसे बात नहीं की। यहां तक कि राजेन्द्र से भी नहीं।

अहमदाबाद अधिवेशन में एक और बात हुई जिसपर नवम्बर के अतिरिक्त अन्य राजनैतिक कैदियों में भी बड़ी हलचल रही। अहमदाबाद में हसरत मोहानी ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखा, जिसका विरोध स्वयं महात्मा जी ने किया। ऐसा करते हुए उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता प्रस्ताव के पक्ष वालों को झिड़कते हुए कहा—आप लोगों में से कुछ लोगों ने जिस हल्के ढंग के साथ इस प्रस्ताव को अपनाया है, उससे मुझे बड़ा कष्ट पहुंचा है। मुझे कष्ट इसलिए पहुंचा है, कि यह उत्तरदायित्व का अभाव सूचित करता है।

अन्ततोगत्वा महात्मा जी के प्रभाव के कारण पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास नहीं हो सका। इसपर केवल नवम्बर ही नहीं कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कैदी भी बिगड़ खड़े हुए। गीता पर नित्य प्रवचन करने वाले, अधेड़ उम्र के स्वामी कुमारानन्द ने कहा—बात कुछ समझ में नहीं आई। तो क्या हम पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं चाहते? यदि चाहते हैं तो फिर इस प्रस्ताव का विरोध करने का क्या उद्देश्य है?

सच तो यह है कि जेल में बन्द किसी भी कैदी को यह बात पसन्द नहीं आई, पर कई ऐसे लोग भी थे, जो इसके समर्थन में आगे बढ़ आए। बाबू रघुवंशनाथ चलती हुई वकालत छोड़कर असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे, बोले—हर सैनिक को यह अधिकार नहीं है कि वह इस तरह से सेनापति के कार्यों की आलोचना करे। सेनापति को सारी बातें मालूम हैं। उसे यह मालूम है कि उसकी ताकत कितनी है और शत्रु की ताकत कितनी है। इसके अतिरिक्त यह कोई 'जैसे चाहो वैसे जीतो' ढंग की लड़ाई नहीं है। हमारे कुछ सिद्धान्त हैं जिनपर हम हर हालत में कायम रहेंगे

नवम्बर इस समय बहुसंख्यकों का प्रतिनिधि या प्रवक्ता बना हुआ था, बोला—क्या मैं जान सकता हूं कि वे सिद्धान्त क्या हैं ?

बाबू रघुवंशनाथ ने अपनी स्वभावसिद्ध सरलता और भद्रता से कहा—मैं भी एक सैनिक हूं, मैं यह दावा नहीं करता कि मैं सत्य और अहिंसा के सारे सिद्धान्तों को समझ चुका हूं। फिर भी मैं इतना जानता हूं कि अहिंसात्मक संग्राम में शत्रु के साथ समझौता हर पग पर हो सकता है। सच तो यह है कि इस प्रसंग में युद्ध और शत्रु इन शब्दों का प्रयोग भ्रान्त है। यह संग्राम तो प्रेम के द्वारा विरोधी के विवेक को जाग्रत् कर उसका हृदय-परिवर्तन करने में विश्वास करता है।

स्वामी कुमारानन्द ने कहा—ठीक है, बात कुछ ऐसी ही होगी, सबसे महत्त्वपूर्ण बात मेरे दृष्टिकोण से यह ज्ञात होती है कि हम लोगों को सेनापति में पूरा विश्वास रखना चाहिए, पर साथ ही इतना तो कहना ही पड़ेगा कि यह बात हमारी क्षुद्र बुद्धि में नहीं आती।

इसके बाद जो लोग अपने को कुछ नेतृ-स्थानीय मानते थे, उनकी गुप-चुप एक बैठक हुई जिसमें राजेन्द्र को भी बुलाया गया।

बाबू रघुवंशनाथ, स्वामी कुमारानन्द, मेजिनी के 'मनुष्य के कर्तव्य' पर व्याख्यान देने वाले छबलानी साहब, मौलाना इकरामुल्ला, मौलाना बन्देअली, अध्यापकप्रसाद, राजेन्द्र इस गोष्ठी में थे।

इन लोगों ने निश्चय किया कि आनन्दकुमार को भी इस सभा में बुलाया जाए, तदनुसार वे भी इस विचार-विनिमय में बुलाए गए। आनन्दकुमार के लिए यह बड़ी भारी विजय थी क्योंकि उस दिन से लोग उनसे कम ही मिलते-जुलते थे।

आनन्दकुमार आ तो गए, पर उन्होंने कहा—मुझे आप इसमें क्यों बुलाते हैं ? मैं कांग्रेस के चार आने का भी सदस्य नहीं, मैं कोई नेता नहीं, मैं तो अपने को एक स्वयंसेवक मानता हूं···

तब बाबू रघुवंशनाथ ने उन्हें अहमदाबाद कांग्रेस की सारी बातें बताईं। बात यह है कि आनन्दकुमार को अखबारों की बात बिल्कुल मालूम नहीं होती थीं, पर चारों तरफ से लोगों की बातचीत से वे कुछ न कुछ खबर पा ही जाते थे।

रघुवंशनाथ ने कहा—स्थिति ज़रा गम्भीर है क्योंकि सभी लोग महात्मा जी की बात को समझ नहीं पा रहे हैं, दूसरी बात यह है कि बिना समझे नेता के पीछे चलने के लायक श्रद्धा भी हममें से बहुत कम लोगों में है, इसलिए बुद्धिभ्रंश उत्पन्न हो रहा है। ऐसे अवसर पर आपको पुरानी बातें भूल जानी चाहिए और हमसे पूरा सहयोग करना चाहिए।

आनन्दकुमार ने कहा—यदि ऐसी ही बात है तो मैं सब तरह से प्रस्तुत हूं।

स्वामी कुमारानन्द ने कहा—आपने उस दिन ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य होने की जो व्याख्या की थी, वह मुझे बहुत पसन्द आई थी, यद्यपि मैंने उस समय ऐसा नहीं कहा था। मैं समझता हूं कि आप महात्मा जी की बातों को बहुत अच्छी तरह समझते हैं।

बाबू रघुवंशनाथ भी इसी मत के थे, पर वे ऐसा सार्वजनिक रूप से इस समय कहने के लिए तैयार नहीं थे। बोले—हम सभी सारी बातों पर विचार करेंगे और मुझे विश्वास है कि श्री आनन्दकुमार का सहयोग बहुत हितकर रहेगा।

विचार-विनिमय प्रारम्भ हुआ। लोग घूम-फिर कर इसी बात पर आने लगे कि महात्मा जी सर्वमान्य नेता हैं, हम उन्हींके चरण-चिह्नों पर चल रहे हैं. सी० आर० दास, मोतीलाल, हकीम अजमलखां सब उन्हींको नेता मानकर सर्वस्व त्याग कर चुके हैं, ऐसी हालत में यह शोभा नहीं देता कि हम उनकी हर बात को उसी समय समझने का दुराग्रह करें।

आनन्दकुमार ने कहा—मेरी क्षुद्रबुद्धि में एक बात और भी आती है।...

कहकर वे जैसे अपने विचारों में खो गए। बोले—हमारे आन्दोलन की विशेषता यह है कि अधिक से अधिक लोग हमारे साथ हों, और अधिक से अधिक लोगों को साथ में रखने में ही हमारी भलाई है। अब तक राष्ट्रीय कांग्रेस पर नरमदल वालों का बहुत प्रभाव रहा और इनमें अंग्रेज़ी भाषा के बहुत अच्छे वक्ता तथा लेखक, सम्पादक इत्यादि हैं। शोर मचाने में ऐसे लोग अद्वितीय हैं। ब्रिटिश सरकार बराबर इन्हें साथ रखना चाहती है, इसीलिए यह दिखलाती है कि वह इन लोगों की बड़ी इज़्ज़त करत

है। महात्मा गांधी डोमिनियन स्टेट्स से आगे बढ़ने से इनकार कर इनकी नैतिक सहानुभूति अपने साथ रखने में सफल सिद्ध होंगे, ऐसी आशा है।

स्वामी कुमारानन्द ने कहा—तो क्या आपका मतलब यह है कि महात्मा गांधी पूर्ण स्वराज्य चाहते हैं?

आनन्दकुमार ने कहा—अवश्य। पर वे अपने लक्ष्य को अभी स्पष्ट करके हममें से जो बहुत-से डरपोक लोग हैं, उन्हें भागने का मौका देना नहीं चाहते। यही गांधी जी का तरीका है, उनकी कार्य-प्रणाली में अधिक से अधिक जनता को अपने साथ रखना बहुत ही आवश्यक है।

कुछ रुककर आनन्दकुमार फिर बोले—गत दो वर्षों से जब से उन्होंने भारतीय राजनीति की बागडोर संभाली है, तब से उनका यही ढंग रहा है। पहले तो उन्होंने केवल इतना ही कहा कि हड़ताल करो, जो लगभग एक मूक प्रतिवाद-मात्र था, पर धीरे-धीरे एक के बाद एक उन्होंने उसमें कई बातें जोड़ दीं। अगला कदम शायद टैक्स बन्दी हो···

स्वामी जी को मौका मिल गया, बोले—जब ३१ दिसम्बर को स्वराज्य लेना है तो लगान बन्दी और टैक्स बन्दी की घोषणा अहमदाबाद कांग्रेस में ज़रूर कर देनी चाहिए थी।

—करने को तो महात्मा जी के अपने व्यक्तित्व का जहां तक सम्बन्ध है, उसी दिन सब कुछ कर लेते, जिस दिन जलियानवाला हत्याकाण्ड हुआ था। वे स्वयं तो उसी समय फांसी चढ़ने और अपनी सारी सम्पत्ति ज़ब्त करवाने के लिए तैयार थे, पर प्रश्न इक्के-दुक्के किसी काम को करने का नहीं था, बल्कि लाखों आदमियों को अपने साथ ले चलने का था। यह तो आप जानते ही हैं कि कोई ज़ंजीर उतनी ही मज़बूत होती है जितनी कि उसकी सबसे कमज़ोर कड़ी। उन्हें तो जनता की नाड़ी देखकर तब आगे बढ़ना पड़ता है। आप किसी रोगी को वही दवा दे सकते हैं, जिसे कि वह बरदाश्त कर लें और जिससे उसे फायदा हो···

बाबू रघुवंशनाथ ने बीच में बोलते हुए कहा—मैं समझता हूं कि आप लोग जो व्याख्या कर रहे हैं, उससे अहमदाबाद कांग्रेस की सारी कार्यवाही स्पष्ट हो जाती है। महात्मा गांधी हसरत मोहानी से पूर्ण स्वतन्त्रता के कहीं अधिक बड़े चाहने वाले हैं, पर वे उसे इस समय बताकर

अपने साथ के लोगों को बिदकाना नहीं चाहते। चाहना ही सब कुछ नहीं है। उसके लिए योग्यता अर्जन करनी चाहिए। ज्यों-ज्यों योग्यता बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों लक्ष्य का स्पष्ट रूप भी सामने आता जाएगा। जैसा कि श्री आनन्दकुमार ने कहा—यही गांधीवादी तरीका है।

जहां तक अहमदाबाद कांग्रेस की कार्यवाही का प्रश्न है उसपर सभी लोग अब सहमत हो चुके थे। फिर भी सभा जारी रही।

बाबू रघुवंशनाथ ने डरते-डरते कहा—यों तो इस सभा का उद्देश्य अहमदाबाद कांग्रेस पर विचार-विनिमय बताया गया है, पर मैं इस सभा के सामने एक दूसरा प्रश्न रखना चाहता हूं, जो हमारे वर्तमान जीवन को देखते हुए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

कहकर वे चुप हो गए, इसके बाद वे स्वामी कुमारानन्द, छबलानी साहब और मौलाना इकरामुल्ला से आंखों-आंखों में कुछ कह गए।

इकरामुल्ला साहब ने मानो उसका जवाब देते हुए कहा—सवाल बड़ा नाज़ुक और अहम है। ३१ दिसम्बर बड़े ज़ोरों से सिर पर आ रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि उस रोज़ सुराज ज़रूर मिल जाएगा, पर कुछ लोग, जैसे कि हमारे लायक दोस्त मिस्टर आनन्दकुमार कहते हैं कि ऐसा शायद ही हो···

इतना कहकर इकरामुल्ला साहब ने सबको ध्यान से देखा। फिर बोले—अब तक यह बहस-मुबाहसे की बात थी, पर दो-चार दिनों में सारी बात सामने आ जाएगी। इसपर एक अहम सवाल यह पैदा होता है कि अव्वल तो सुराज होकर रहेगा, पर मान लीजिए कि खुदा न ख्वास्ता किसी आफते-नागहानी की वजह से उस दिन सुराज नहीं ही हुआ, तो उसका हमपर क्या असर पड़ेगा···

मौलाना इकरामुल्ला इतना कहकर बाबू रघुवंशनाथ की ओर देखने लगे। उनकी अन्तिम बात रघुवंशनाथ को पसन्द नहीं आई थी, इसलिए उसे संशोधित करते हुए उन्होंने कहा—जैसा कि अभी कहा गया हमारा आन्दोलन सबको साथ लेकर चलना चाहता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि इसमें हर तरह के आदमी हैं। कोई बहुत बहादुर है और कोई अपेक्षाकृत कमज़ोर दिल का है। सवाल यह है कि जो कमज़ोर दिल भाई

हैं, और जो यह समझकर अब तक जेल काट रहे हैं कि ३१ तारीख को स्वराज्य होगा, उनको हम कैसे संभालें ?

बाबू रघुवंशनाथ का व्याख्यान जब यहां तक पहुंचा, तो उन्होंने देखा कि जंगले के बाहर दीवार की आड़ में खड़े होकर दो-तीन राजनीतिक कैदी उनकी बातों को सुन रहे हैं। इन चेहरों में से एक तो पहचान में आ गया। वह नवम्बर था।

रघुवंशनाथ फौरन ऐंठ गए। उन्होंने राजेन्द्र से कहा, क्योंकि वही बैठे हुए लोगों में सबसे कम उम्र था—जाकर देखो कोई नम्बरदार या पहरेदार हमारी बातें तो नहीं सुन रहा है…

राजेन्द्र अनिच्छापूर्वक उठकर चला गया, और बैरक की एक बार प्रदक्षिणा लगाकर लौट आया। नवम्बर खिसक चुका था।

उस समय रघुवंशनाथ कह रहे थे—यद्यपि हमने क्लासें लगाकर, मुशायरे तथा अन्य सांस्कृतिक अनुष्ठान संगठित कर लोगों को बराबर चिन्ताओं से दूर रखा है, फिर भी बीच-बीच में दो-चार लोग बराबर माफी मांगकर चले जाते हैं। अब ३१ दिसम्बर हमारे सामने है। इस अवसर पर यदि कमजोर लोग कमज़ोरी दिखाएं तो उसके लिए अभी से हमें तैयार हो जाना चाहिए…

इतनी देर में असली बात सामने आई। आनन्दकुमार को तो इस विषय पर कुछ कहना ही नहीं था। वे कई दिन पहले अपने विचार स्पष्ट कर चुके थे और मन ही मन हंस रहे थे कि आखिर सभी लोग उसी विचार पर आ रहे हैं। उनके मन में इस बात की भी बहुत खुशी थी कि वे अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार महात्मा जी की कम से कम एक बात को ठीक ढंग से समझ पाए थे।

किसीने कुछ नहीं कहा, पर राजेन्द्र ने फिर भी हठधर्मी का प्रदर्शन कर कहा—तो क्या आप सब लोग यह माने ले रहे हैं कि ३१ तारीख को आधी रात के बाद भी हम परतन्त्र रह जाएंगे ?

बाबू रघुवंशनाथ को इस प्रकार का सीधा प्रश्न बहुत नापसन्द आया। बोले—हम लोग ऐसा कुछ भी नहीं कह रहे हैं। तुम विश्वास रखो कि हम सब लोगों को महात्मा जी पर उतना ही विश्वास है जितना तुम्हें है,

और भी एक बात बता दूं कि चाहे ३१ दिसम्बर को स्वतन्त्रता हो या न हो, उनपर हमारा विश्वास उतना ही दृढ़ रहेगा।

इतना कहकर रघुवंशनाथ ने यह अनुभव किया कि शायद वे राजेन्द्र के प्रति कुछ अधिक रुखाई दिखा गए, इसलिए वकालत के ढंग पर बोले—मुझे इसपर एक बात याद आती है, जिसे मैं तभी सुना सकता हूं जब मौलाना वन्देअली मुझे इजाजत दें···

वृद्ध वन्देअली अपने पोपले मुंह के बाकी दांतों को जीभ से मानो गिनते हुए बोले—इसमें मेरी इजाज़त की क्या बात है ? मैं भला किस लायक हूं ?

रघुवंशनाथ ने हंसते हुए कहा—बात यह है कि आप एक मशहूर आलिम हैं और मैं इस वक्त इस्लाम की तवारीख से ही एक बात सुनाना चाहता हूं।

मौलाना वन्देअली ने कहा—सुनाइए। सुनाइए। आप भी तो फारसी के आलिम हैं और आपके पिदर बुज़ुर्गवार तो अरबी में भी दखल रखते थे।

तब रघुवंशनाथ ने कहा—यह हज़रतअली की बात है। एक बार उनसे किसीने पूछा कि हज़रत, अगर खुदा आपके सामने आकर खड़े हो जाएं, तो क्या हो ? इसपर हज़रत ने फौरन कहा—"उससे मेरे अकीदे में ज़रा भी इज़ाफा नहीं होगा ?" यानी उससे मेरे विश्वास में ज़रा भी वृद्धि नहीं होगी। यही हम लोगों का भी कहना है कि ३१ दिसम्बर को स्वराज्य हो या न हो, चाहे बीस साल तक स्वराज्य न हो, महात्मा जी पर हमारे विश्वास में कोई कमी नहीं आएगी।

आनन्दकुमार ने समर्थन करते हुए कहा—आपने बहुत अच्छी बात कही, बहुत सुन्दर। मेरा तो कहना यह है कि इतना ही जानना हमारे लिए यथेष्ट है कि हम सही दिशा में जा रहे हैं, और हमारा नेतृत्व एक सर्वस्व त्यागी महात्मा कर रहे हैं।

इकरामुल्ला ने फिर से असली प्रश्न को छेड़ते हुए कहा—हमें ऐसे अकीदावाले लोगों के बारे में कोई फिक्र नहीं है, पर कुछ लोग ऐसे हैं जो अकीदे के कच्चे हैं, वे फौरन नतीजा चाहते हैं···

—जैसे कोलम्बस के साथी थे।—रघुवंशनाथ ने सहारा देते हुए कहा।

इकरामुल्ला साहब ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा—जी हां, बिलकुल उन्हींकी तरह। ऐसे लोगों को कैसे संभाला जाए, खासकर जब कि वे जेल में पड़े हुए हों।

—और ब्रिटिश सरकार उन्हें एक क़ाग़ज पर दस्तखत-भर कराकर माफी देने के लिए उधार खाए बैठी हो।

इसपर बड़े ज़ोर का कहकहा लगा। आनन्दकुमार ने इस कहकहे का मानो ज़ेर खींचते हुए कहा—आप कोलम्बस के साथियों की ताकत को कम करके न बताइए। वे चाहते तो कोलम्बस को कैद कर सकते थे और उसके जहाज़ को पीछे की ओर ले जा सकते थे।

इकरामुल्ला साहब ने कहा—पर यहां तो सिर्फ माफी मांगकर अपनी ही हेठी करा सकते हैं। इससे वे अपने को ही नुकसान पहुंचा सकते हैं, वे हमारे रहबर या तहरीक का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

प्रश्न फिर भी टला जा रहा था, इसलिए अब रघुवंशनाथ ने बीच में पड़कर कहा—सब राजनैतिक कैदियों की एक सभा की जाए जिसमें सारी बात साफ-साफ रख दी जाए। मुख्य वक्ता आनन्दकुमार हों।…

—हां, हम उन्हींको सामने रखकर आगे बढ़ेंगे और आशा है कि हमें सफलता मिलेगी।

आनन्दकुमार ने हंसते हुए कहा—इसका अर्थ यह हुआ कि आप लोग मुझे ही सूली पर चढ़ाना चाहते हैं। सारी गालियां मुझे ही मिलेंगी।

बाबू रघुवंशनाथ ने कहा—जो गालियां आपको मिल चुकी हैं, उनमें कुछ वृद्धि नहीं हो सकती। इस बार हम लोग भी आपके पीछे-पीछे हैं।

आनन्दकुमार ने सहर्ष सभा में बोलना और उसका सभापतित्व करना स्वीकार किया।

इसी समय सारे राजनैतिक कैदियों को एकत्र किया गया और एक सभा हुई, जिसमें आनन्दकुमार ने उन्हीं बातों को दुहराया, जिन्हें उन्होंने उस दिन कहा था। पहले उन्होंने भारतीय राजनीति में महात्मा जी के

प्रवेश की बात को बड़े विस्तार के साथ कहा, फिर उन्होंने धीरे-धीरे यह बताया कि कैसे आन्दोलन आगे बढ़ता चला गया। उन्होंने उस सभा का भी वर्णन किया जिसमें राजाओं और पण्डितों ने मिलकर जनता के विरुद्ध षड्यन्त्र किया था। फिर वे अहमदाबाद कांग्रेस पर आए। उन्होंने बताया कि महात्मा गांधी ने क्यों पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव का विरोध किया। इसके बाद उन्होंने ३१ दिसम्बर की आधी रात को स्वराज्य होगा या नहीं होगा, इस सम्बन्ध में बताना शुरू किया।

उन्होंने हज़रतअली की वह बात भी सुना दी और कहा कि हम सही दिशा में जा रहे हैं, हमारे नेता एक सर्वस्वत्यागी महात्मा हैं, इसलिए हमें और किसी सान्त्वना की आवश्यकता नहीं है।

सबने भाषण का बहुत अच्छी तरह स्वागत किया। बाबू रघुवंशनाथ तथा अन्य नेताओं को इसपर बड़ा आश्चर्य हुआ, पर वे समझ गए कि उस दिन आनन्दकुमार ने राजेन्द्र से जो बात कही थी, उसीके कारण लोग मानसिक रूप से तैयार हो चुके थे और अब जब उनसे असली बात कही गई तो किसीको कोई धक्का नहीं लगा। पर साथ ही यह भी ज्ञात हो गया कि कुछ साधारण स्वयंसेवक इससे प्रसन्न भी नहीं हुए।

२३

अगले दिन अभी बैरकें खुली ही थीं कि नवम्बर के पेट में बहुत ज़ोर का दर्द उठा। राजनैतिक कैदियों में दो डाक्टर भी थे। जब कोई राजनैतिक कैदी बीमार होता तो ये लोग उसे देखते थे और जेल का डाक्टर बुलाया जाता था।

बात यह है कि राजनैतिक कैदियों के रूप में बन्द डाक्टरों के पास उपचार या दवादारू का कोई साधन नहीं था। इसके अलावा जेल-अधिकारियों ने उनसे किसी मौके पर यह भी कह रखा था कि कैदी द्वारा कैदी का इलाज किया जाना गैरकानूनी है।

इस चेतावनी के कारण तो नहीं, पर साधनों के अभाव के कारण हर मौके पर जेल के डाक्टर ही बुलाए जाते थे। नवम्बर को पहले तो साथी डाक्टर देखते रहे, वे कुछ समझ नहीं पाए। इस बीच में जेल का डाक्टर भी आ पहुंचा।

यदि यह कहा जाए कि उस युग में जेल का डाक्टर डाक्टर कम होता था और जेलर अधिक तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जेल का डाक्टर जब भी किसी कैदी को देखता था, तो वह पहले ही यह मान लेता था कि कैदी बहाना कर रहा होगा। इस सम्बन्ध में जेल में कितने ही किस्से प्रचलित थे।

डाक्टर यही कहता रहा कि कैदी को कुछ नहीं है, और थोड़ी देर बाद कैदी चल बसा। इस सम्बन्ध में एक कविता भी सभी जेलों में प्रचलित थी:

कैदी कहे मरा मरा,
डाक्टर कहे बीमार नहीं,
कोई किसी का यार नहीं।

डाक्टर मेहरोत्रा ने जेलों में ही अपने बाल सफेद किए थे। लोग तो यहां तक कहते थे कि इस डाक्टर ने कैदियों से अच्छे पैसे बनाए थे। यहां यह बता दिया जाए कि जेलों के अन्दर डाक्टरों को बड़े अधिकार होते हैं। यदि डाक्टर लिखे कि कैदी कड़ी मशक्कत करने के योग्य है, तभी उसे चक्की, कोल्हू आदि दिया जा सकता है, नहीं तो उसे हल्की मशक्कत दी जाती है, जैसे रस्सी बटना इत्यादि। डाक्टर कैदी को अस्पताल में भरती कर सकता है, जहां कुछ काम करना नहीं पड़ता। इसके अलावा वह मरीज़ को खाने के लिए दूध, गोश्त आदि भी बांध सकता है।

डाक्टर मेहरोत्रा इतने शक्तिशाली होते हुए भी राजनैतिक कैदियों से भद्र व्यवहार रखते थे। आरम्भ में उन्होंने इनपर भी रोब गांठने की चेष्टा की थी, पर जब थोड़े दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि ये लोहे के चने हैं, भाड़ को ही फोड़कर रख देते हैं, इनके सामने जेल का सारा अनुशासन टूट गया, यहां तक कि महज़ कैद और सख्त कैद में भी प्रभेद जाता रहा, तब वे दूसरे ढंग से चलने लगे।

डाक्टर मेहरोत्रा ने नवम्बर को अच्छी तरह देखकर वहां के राजनैतिक कैदी डाक्टरों से पूछा—आप लोगों को क्या मालूम होता है ?

उन डाक्टरों ने कहा कि उन्हें कुछ पता नहीं चला। तब डाक्टर मेहरोत्रा ने फिर से नवम्बर को स्टेथिस्कोप से देखा और कहा—मुझे मालूम होता है कि कोई गम्भीर मामला है। पर इसका इलाज कहां तक जेल के अन्दर हो सकेगा इसमें मुझे सन्देह है।

कहकर वह अजीब तरीके से हंसा। नवम्बर ने कनखियों से डाक्टर को देखा, फिर पहले की तरह कराहने लगा। डाक्टर मेहरोत्रा ने सब कुछ देखने के बाद कहा—तो मैं इन्हें अस्पताल ले जाता हूं, फिर वहां जो होगा देखा जाएगा।

नवम्बर यह सुनकर उठ बैठा, बोला—मुझे जल्दी से ले चलिए और जो कुछ करना है करिए, मुझे बहुत तकलीफ हो रही है।···

पर डाक्टर मेहरोत्रा ने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बोला—आप लेटे रहिए, अभी अस्पताल ले जाने से कोई फायदा नहीं, जेलर को आने दीजिए, मेजर हार्पर को आने दीजिए, बड़े डाक्टर तो वे

ही हैं।—कहकर वह फिर हंसा।

थोड़ी देर रुककर मानो कोई गम्भीर प्रश्न सुलझाकर बोला—आपमें से किसीको मालूम है, इनकी सज़ा के कितने दिन रहते हैं ?

नवम्बर ने कराहना बढ़ा दिया। राजेन्द्र, जिसे नवम्बर के साथ ही सज़ा हुई थी, बोला—इनको छः महीने की सज़ा है, जिसमें से लगभग दो महीने कट चुके हैं, चार महीने बाकी रहते हैं···

डाक्टर मेहरोत्रा बोला—अच्छा ! यह बात है ?

फिर वह डाक्टर राजनैतिक कैदी डाक्टरों के साथ इधर-उधर की बातें करने लगा। बोला—मेरी भी तबियत चाहती है कि कुछ दिनों के लिए आप लोगों की तरह मैं भी जेल काटूं जिससे कि मुझे कुछ दिन विश्राम करने को मिले। यहां तो काम के मारे यह हाल है कि न दिन को चैन न रात को नींद···

उसकी बात सुनकर राजेन्द्र तथा अन्य जो लोग जमा थे, वे हंसे क्योंकि वे जानते थे कि डाक्टर साहब किस प्रकार अपनी ड्यूटी बजाते हैं। पहली बात तो यह थी कि इस जेल के लिए तीन डाक्टर थे, जो बारी-बारी से ड्यूटी पर रहते थे, हां, डाक्टर मेहरोत्रा सबसे वरिष्ठ थे, इस नाते मेजर हार्पर जब अस्पताल आते थे, तो उन्हें अवश्य आना पड़ता था।

जब रात को उनकी ड्यूटी होती थी और किसी बैरक से उनका बुलावा आता था, तो वे रोगी को बिना देखे ही उनके लिए अफीम के अर्क वाला एक मिक्सचर भेज देते थे, जिससे वह सो जाए। यदि इस-पर भी वह नहीं सोता था, तो उसे उसी दवा की एक और खुराक भेज देते थे। सच तो यह है कि मिक्सचर भी वे नहीं भेजते थे, बल्कि जो कैदी उनके साथ ड्यूटी पर होता था, वही डाक्टर साहब की तरफ से वह सर्व-रोगहर मिक्सचर भेज देता था। इसी भेजाभेजी में रात कट जाती थी। डाक्टर साहब रात-भर अच्छी तरह सोकर घर चले जाते थे।

राजेन्द्र ने कहा—आप जेल काटने की बात कह रहे हैं, पर आप तो जन्मकैदी हैं, हम लोग देर-सबेर में छूटकर चले जाएंगे, पर आप लोग तो यहीं डटे रहेंगे।—कहकर वह हंसा।

डाक्टर मेहरोत्रा भी हंसे । बोले—हां, आप बात सच्ची कहते हैं। कितने डामिल (आजन्म कैदी) कैद काटकर फिर से आ गए और मैं यहीं पर डटा हूं ।

कहकर डाक्टर साहब ने विदा ली और थोड़ी देर में स्ट्रेचर आया, जिसपर नवम्बर को अस्पताल भेज दिया गया। अस्पताल जाते समय रोगी अपने साथियों से विदाई मांगता था, पर नवम्बर ने अपना मुंह एक कपड़े से जो ढक रखा था सो खोला ही नहीं ।

राजेन्द्र ने फिर भी उससे कहा—घबड़ाना नहीं । तुम्हारा दर्द शाम तक ठीक हो जाएगा। मेजर हार्पर अच्छे डाक्टर हैं और चिकित्सा भी अच्छी करते हैं···

पर उधर से कोई उत्तर नहीं आया। हां, स्ट्रेचर पर चढ़ते ही रोगी का कराहना कम हो गया और राजेन्द्र ने देखा कि अहाते के जंगलेदार फाटक के बाहर स्ट्रेचर पहुंचते ही नवम्बर ने मुंह खोल दिया और शायद इधर-उधर का दृश्य देखने लगा।···

राजनीतिक कैदियों में जो सबसे बुजुर्ग वहां उसे विदाई देने के लिए आए थे, उन्होंने कहा—जेल का पानी शहर से खराब मालूम होता है, इसीलिए किसीको कब्ज़ और किसीको पेचिश लगी रहती है ।

सबने इस बात का समर्थन किया और लोग अपने-अपने काम में लग गए ।

थोड़ी देर बाद स्वामी कुमारानन्द की गीता की श्रेणी में बैठे हुए राजेन्द्र ने देखा कि मंगरू उसे इशारे से बुला रहा है। राजेन्द्र ने उसी इशारे की भाषा में उससे वहीं बैठे-बैठे कहा कि श्रेणी समाप्त हो जाए तो मै आता हूं, पर मंगरू ने बड़े ज़ोर से आंख मारी, जिसका मतलब यह था कि तुरन्त चले आओ, ज़रूरी काम है।

मज़बूरी से राजेन्द्र को श्रेणी छोड़कर मंगरू से मिलने के लिए उठना पड़ा, पर रोज़ की तरह मंगरू ने वहां बात नहीं की। इशारे से वह राजेन्द्र को बैरक के पीछे ले गया और इधर-उधर ध्यान से देखकर बोला—नवम्बर तो माफीनामे पर दस्तखत करने जा रहा है।···

राजेन्द्र को जैसे काठ मारगया।

सहसा उसके मंह से कोई बात नहीं निकली, बोला—ऐसा नहीं हो सकता, भगवतीचरण बहुत जोशीला युवक है, तुम्हें गलतफहमी हो गई होगी। शायद कोई आपरेशन होना है और जेल के कायदे के अनुसार आपरेशन के पहले एक शर्तनामा लिखाया जाता है, उसीपर उसने दस्तखत किया होगा।

मंगरू जोर से प्रतिवाद करते हुए बोला—वह तो मुझे भी मालूम है, उसपर तो डाक्टर दस्तखत करवाता है, पर इसके लिए तो हौलू[1] खुद आया था।

—उसके पेट का दर्द कैसा है ?

मंगरू बोला—पेट का दर्द तो इस अहाते से निकलने का एक बहाना था। मैंने वहां के नम्बरदार से पता लगाया, तो मालूम हुआ कि ज्योंही वह अस्पताल पहुंचा त्योंही उठकर खड़ा हो गया और जब कम्पाउण्डर ने उसे देखने के लिए बुलाया तो उसने कहा, "मुझे आपसे काम नहीं जेलर साहब से काम है।"

सुनकर राजेन्द्र समझ गया कि मंगरू जो कुछ कह रहा है, वह सही है। उसने मंगरू से कहा—भाई! इस बात को किसीसे न कहना। बिल्कुल चुप रहो।

राजेन्द्र ने फौरन ही जाकर सारी बात रघुवंशनाथ को सुना दी। रघुवंशनाथ ने कहा—यह तो तुमने अच्छा किया कि इस खबर को फैलने नहीं दिया, पर इस सम्बन्ध में क्या होना चाहिए अभी सलाह करके बताता हूं।

प्रमुख व्यक्ति औपचारिक सभा के रूप में नहीं, बल्कि ऐसे जुटे मानो अनायास ही टहलते-टहलते आ गए हों। जल्दी-जल्दी बातचीत हुई। सबके चेहरों पर घबराहट थी। राजेन्द्र ने कहा—जब भगवती ऐसा कर गया तो फिर किसीका भरोसा नहीं है।

यही निर्णय हुआ कि अभी किसीको यह पता न दिया जाए कि नवम्बर माफी मांगकर छूट गया। राजेन्द्र से यह कहा गया कि वह मंगरू को

१. खैराती नबी का जेल में प्रचलित नाम।

इस प्रकार संतुष्ट रखे कि वह बात फैला न पाए।

राजेन्द्र ने कहा—आप निश्चिन्त रहें, मैं सारी बात संभाल लूंगा।

पर राजेन्द्र की भरसक चेष्टा करने पर भी दिन चार बजे तक प्रत्येक राजनीतिक कैदी को यह पता लग गया कि भगवती उर्फ नवम्बर माफी मांगकर चला गया है।

वह माफी मांगकर चला गया, कोई बात नहीं, पर लोगों ने यह कहा कि नेताओं को सारी बातें उसी समय मालूम हो गई थीं, पर यह बात छिपाई गई। इसीपर कुछ लोगों ने एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। यहां तक कि एक सभा बुलानी पड़ी।

आनन्दकुमार ने पहले ही नेताओं से यह कह दिया था—परिस्थिति बहुत गम्भीर है। इसलिए लोग जो कुछ भी कहें उसे धैर्यपूर्वक सुनना चाहिए। जब लोग अपनी भड़ास निकाल लें, तभी कुछ कहने की चेष्टा की जाए।

इसीके अनुसार सभा की कार्यवाही चलाई गई। राजेन्द्र ने बिना पूछे बाबू रघुवंशनाथ का नाम सभापति-पद के लिए पेश किया।

उसी पेड़ के नीचे मुख्य-मुख्य लोग फिर जुटे, पर अब की बार जब रघुवंशनाथ सभापति बनने के लिए तैयार थे, आनन्दकुमार ने आपत्ति उठाते हुए कहा—आज तो आप और हम अभियुक्त हैं, इस कारण सभापति कोई और बने तो ठीक है।

बाबू रघुवंशनाथ ने स्थिति समझकर फौरन अपना नाम वापस ले लिया। एक नौजवान निर्मलकुमार सभापति चुना गया। एक के बाद एक ज़ोरदार व्याख्यान होने लगे जिसमें जेल के नेताओं की बुराई की गई। एक वक्ता ने कहा—ये लोग अपने को ही सब कुछ समझते हैं। ये इस बात को भूल गए कि हम लोग जेल में किसीके भेजने से नहीं आए हैं बल्कि महात्मा गांधी की आज्ञा पर आए हैं। जब हम जेल में आए, तो ये लोग किसी न किसी उपाय से नेता बन बैठे और अब ये हमसे ऐसी खबरें छिपाते हैं जिन्हें छिपाने का इन्हें कोई अधिकार नहीं है।

एक दूसरे वक्ता ने कहा—जब सबेरे ये लोग बरगद के नीचे खड़े होकर चुपके-चुपके बातें कर रहे थे तभी मैं समझ गया था कि कुछ

दाल में काला है। जब ये लोग भीतर हमारे साथ यह व्ययहार कर रहे हैं, तो ये बाहर जाकर हमारे साथ जैसा व्यवहार करेंगे, हम उसका अनुमान लगा सकते हैं। यह अच्छा हुआ कि हमारी आंख बहुत जल्दी खुल गई।

एक तीसरे वक्ता ने राजेन्द्र पर सीधा हमला करते हुए कहा—ये राजेन्द्र साहब जाने अपने को क्या समझते हैं। इन्हें शर्म आनी चाहिए कि इन्हींके साथियों में से एक आदमी ने माफी मांगी, पर इसकी बजाय कि वे मुंह छिपाते फिरें, वे शेर बने फिरते हैं और कैदियों से हमेशा खुसुर-पुसुर करते रहते हैं।

जब इस तरह सब लोग अपनी-अपनी कह चुके, तब मौलाना इकरा-मुल्ला ने बाबू आनन्दकुमार को इशारा किया और वे कथित नेताओं की तरफ से बोलने के लिए खड़े हुए। उन्होंने पहले ही वाक्य में दोष स्वीकार कर लिया, बोले—हमें यह डर था कि शायद भगवती की तरह कमज़ोर दिल एक-आध भाई और हों, इसीलिए हमने खबर को फैलाने से रोका पर हमें यह देखकर खुशी हो रही है कि आप लोग सभी बड़े बहादुर और बुद्धिमान हैं···

इसी प्रकार वे कुछ देर तक लोगों की प्रशंसा करते रहे। इसके बाद उन्होंने कहा—रही नेतागिरी की बात। मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि अब बाकायदा पांच नवयुवक कार्यकारिणी समिति के रूप में चुन लिए जाएं और वे ही सब बातों में हमारा नेतृत्व करें।

इसपर जो असन्तुष्ट लोग थे वे सन्तुष्ट हो गए। विरोधियों में से ही लोगों ने यह प्रस्ताव रखा कि जैसे महात्मा गांधी अहमदाबाद कांग्रेस में सारे देश के नेता और अधिनायक चुने गए हैं, उसी प्रकार आनन्दकुमार हमारे नेता हो जाएं। इतने नेताओं की कोई ज़रूरत नहीं।

आनन्दकुमार ने बहुतेरा मना किया, पर किसीने उनकी बात नहीं सुनी और वे आगे के लिए सब राजनैतिक कैदियों के नेता चुन लिए गए।

पर उन्होंने अपने नेतृत्व का कभी प्रयोग नहीं किया। जब कोई बात होती थी, तो वे सबको बुलाकर पूछ लेते थे।

इसी प्रकार फिर से राजनैतिक कैदी शान्ति से रहने लगे, उनकी

श्रेणियां और व्याख्यान-मालाएं जारी रहीं, आने वालों के स्वागत-समारोह और जाने वालों के विदाई-समारोह पहले की तरह चलते रहे।

३१ दिसम्बर आया और चला गया। इधर-उधर कभी कोई माफी भी मांग लेता था। जब ऐसी खबर आती थी तो लोग क्षण-भर के लिए चुप और हतबुद्धि हो जाते थे, जैसे किसीकी मृत्यु की खबर सुनकर लोग होते हैं, फिर थोड़ी देर बाद लोग अपने साधारण काम-काज में लग जाते थे। हां, हृदय पर कुछ बोझ होता था।

२४

३१ दिसम्बर के बाद भी लोग बराबर गिरफ्तार होकर जेलों में आते रहे। देखा गया कि लोगों के जोश में अथवा जेल आने वालों की संख्या में कोई कमी नहीं आई।

लोगों के मन में यह आशा लगी हुई थी कि कुछ न कुछ हो रहा है, लड़ाई जारी है, नतीजा कुछ न कुछ होगा। बाहर से यह खबर आई कि एक सर्वदल सम्मेलन हो रहा है, पर लोगों ने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया क्योंकि सम्मेलनों पर से लोगों का विश्वास उठ गया था। लोग यही समझते थे कि जो कुछ होगा वह जेल जाने से ही होगा। उच्चाकांक्षा यह थी कि ऐसी परिस्थिति बना दी जाए कि सारी जेलें भर जाएं, सरकार को टैक्स के रूप में एक भी पैसा न मिले, सारे सरकारी नौकर इस्तीफा दे दें, इस प्रकार सरकार असम्भव हो जाए।

पर महात्मा जी ने टैक्स बन्दी आन्दोलन की स्वीकृति नहीं दी, यद्यपि एक ज़िले के बाद दूसरे करबन्दी की आज्ञा मांगते जा रहे थे कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दिया जाए। मद्रास के कई ज़िलों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन या सत्याग्रह शुरू कर दिया था, पर गांधी जी बीच में पड़े और टैक्स दे दिया गया।

इन्हीं दिनों जेलों के अन्दर सरकार ने राजनैतिक कैदियों को कई वर्गों में बांटने का कार्यक्रम चला दिया, जिसका उद्देश्य पता नहीं क्या था पर लोगों का यही कहना था कि यह राजनैतिक कैदियों में फूट पैदा करना था। इस सम्बन्ध में ऊपर के किसी प्रकार का कोई आदेश नहीं था इसलिए सारी बातें अललटप ढंग से चल रही थीं।

त्रिलोचन फिर से जेल नहीं गया, यद्यपि विदाई-समारोह में वह

यही कह आया था कि मैं फौरन लौटूंगा। बाहर आते ही वह अजीब परिस्थितियों में पड़ गया। एक तो घर सम्भालना था, दूसरे उसने बाहर आकर यह देखा कि बहुत-सी ऐसी बातें हो रही हैं जो उसकी समझ से बाहर हैं।

उसके पहले मालिक ने उसे इस शर्त पर फिर से नियुक्त किया था कि वह अब जेल नहीं जाएगा। उसकी मां भी उसपर यही प्रभाव डाल रही थी। मां ने कहा—बेटा, तुम तो देश के लिए मरते हो, पर तुम्हारे पीछे भी कोई कुछ करता है ? कांग्रेस के पास इतना पैसा है, पर किसीने यह भी पूछा कि त्रिलोचन की मां ! तुम्हें खाने को भी मिलता है या नहीं ?

इसपर त्रिलोचन ने मां को समझाया—इस समय कांग्रेस की सारी ताकत ब्रिटिश सरकार से लड़ने में लगी हुई है इसलिए कांग्रेस एक-एक व्यक्ति की देखभाल करे, यह सम्भव नहीं है।

कहने को तो उसने कह दिया, पर उसका मन कुछ उचट गया।

अविनाश और रामानन्द ने जिन लोगों का पता दिया था, उन लोगों में से कई तो जेलों में थे। ऐसा मालूम होता है कि वे आसपास के ज़िलों से गिरफ्तार होकर वहीं के ज़िला जेलों में बन्द थे। वह बाकी लोगों से मिला तो अजीब तजरबा रहा। एक तो यह सुनकर ही कि वह अभी जेल से आया है, उससे ऐसा बिदका मानो वह कोई जंगली पशु हो।

उसका नाम शमशेर था। बोला—मैं अविनाश को बिलकुल नहीं जानता। यों स्कूल में जाने किन-किनके साथ पढ़ा, सम्भव है कि कोई अविनाश भी रहा हो···

त्रिलोचन ने कहा—वे तो कहते थे कि आप उन्हींकी पार्टी के सदस्य थे, इसीलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा।

शमशेर यह सुनकर और भी नाराज़ हुआ, बोला—मुझे राजनीति से कभी कोई सरोकार नहीं रहा। मैं तो कभी राजनीति के पास भी नहीं फटका।

सब कुछ देख-सुनकर त्रिलोचन बहुत नाराज़ हुआ, बोला—सो तो देख ही रहा हूं। जब इतना बड़ा आन्दोलन चला, जिसमें मेरे ऐसे नाचीज़

भी एक बार बह गए और आप अविनाश तथा रामानन्द के साथी होकर भी आज उनके परिचित होने की बात तक नहीं मान रहे हैं, तभी मुझे समझ लेना चाहिए था।

त्रिलोचन दूसरे साहब पंकजलाल के पास गया, तो वे बिलकुल दूसरे ही ध्रुव पर ज्ञात हुए। उन्होंने यह सुनते ही कि त्रिलोचन असहयोग आन्दोलन में जेल काटकर आया है, कहा—भला, कभी अहिंसा से भी स्वराज्य हो सकता है ? बड़ी धूम मचा रखी थी कि ३१ तारीख को स्वराज्य होगा, पर न जाने कितनी ३१ तारीखें निकल जाएंगी, और स्वराज्य का कहीं पता न होगा। इसीलिए तो मैं सारी बातों से अलग रहा।···

इसी ढंग से उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं। त्रिलोचन को उनकी बातें बिलकुल पसन्द नहीं आईं। अन्त में ऊबकर उसने कहा—तो आप अपने ही विचारों से कुछ करते। आप तो केवल बैठे हुए हैं और जो लोग थोड़ा-बहुत कर भी रहे हैं, उनकी निरर्थक निन्दा में ही समय नष्ट कर रहे हैं।

वहां से भी त्रिलोचन दुखी होकर लौटा। वह समझ गया कि अविनाश और रामानन्द जैसे लोग कम हैं। उसने सारी बातों की एक रिपोर्ट-सी अविनाश को चोरी से लिख भेजी। हां, एक साधारण गृहस्थ सुखदेव जिसके यहां अविनाश पकड़ा गया था, उसे बहुत अच्छा लगा। उसने साफ-साफ कहा—भाई मैं ज़रूर अविनाश आदि के साथ था, पर संग्रहणी रोग से पीड़ित रहता हूं, कुछ करने की सामर्थ्य नहीं है। पहले तो दुबका पड़ा रहा, पर जब से महात्मा जी ने नेतृत्व संभाला, मैंने उनके काम में यथासाध्य हाथ बंटाना शुरू किया है। स्वयं तो कुछ कर नहीं सकता, पर लोगों को सहायता दे दिया करता हूं।

उसने और भी कहा—मैं चाहता हूं कि तुम्हारे ऐसे लोग मुझसे मिला करें। तुम कहते हो, जेल में पैसे भेजे जा सकते हैं, सो जो ज़रूरत हो, मुझसे लेकर रामानन्द और अविनाश को भेज दिया करो।

उसने स्वयं त्रिलोचन को आर्थिक सहायता दी और जब त्रिलोचन ने कहा कि मैं सहायता नहीं लूंगा, तो उसने अनशन की धमकी दी। इस

प्रकार एक ही बार की मुलाकात में दोनों बहुत घनिष्ठ हो गए।

सुखदेव से ही उसे श्यामा का पता लगा। तब से सुखदेव के घर में जो बैठक जमती थी, उसमें त्रिलोचन अक्सर आता था और वहीं पर उसकी श्यामा से भेंट हो जाया करती थी।

२५

राजेन्द्र को उषादेवी का एक पत्र मिला था जो चोरी से आया था। इस पत्र में उषादेवी ने बहुत-सी खबरें दी थीं।

सबसे पहली खबर तो यह थी कि राजेन्द्र के पिता रायसाहब राजकिशोर अब सी० आई० ई० हो चुके थे। मित्रों ने बहुत ज़ोर डाला था कि इसकी खुशी में एक पार्टी हो जाए, पर उषादेवी ने इसका ज़बरदस्त विरोध किया था, इसलिए यह पार्टी नहीं हो सकी।

दूसरी खबर यह थी कि श्यामा का पता लग गया था। जिस रात को आनन्दकुमार गिरफ्तार हुए, उसकी अगली सुबह को श्यामा रूपवती से लड़कर चली गई थी। पता नहीं इस बीच में कहां-कहां थी, पर अब वह जब-तब दिखाई पड़ जाती है। उसके भाइयों ने उसे घर में बुलाने के कई प्रयत्न किए, पर वह किसी भी तरह घर में नहीं आई। मालूम हुआ है कि वह राष्ट्रीय बालिका विद्यालय में शिक्षिका बन गई है, शायद पच्चीस या तीस रुपये मिलते हैं।

उषादेवी ने सारी बातें लिखकर यह उपसंहार निकाला था—"जहां तक हम लोगों का सम्बन्ध है, मेरे विचार से अब यही समझना चाहिए कि वह दूसरे ही जगत् की हो गई। मैंने तुम्हें जानसन के बंगले वाली घटना पहले ही बता दी थी।"

उषादेवी ने आन्दोलन के सम्बन्ध में भी लिखा था—"सभी लोग यह कह रहे हैं कि यह आन्दोलन शायद आयरलैंड की तरह शताब्दियों तक चले। ऐसी अवस्था में मैं समझती हूं कि तुम छूटकर अपना डाक्टरेट पूरा कर लो। उसके बाद या यदि तुम मेरी बात मानो तो उसी बीच में कोई अच्छी-सी लड़की देखकर तुम्हारी शादी कर दी जाए।

" रहा यह कि छूटने पर तुम कहां रहोगे, इस सम्बन्ध में यह तो साफ ही है कि तुम अब रूपवती के यहां नहीं रह सकते। तुमने लिखा भी है कि आनन्दकुमार जिस तरह से जेल में सबके नेता बन बैठे हैं, वह तुम्हें पसन्द नहीं है। यद्यपि तुम्हारे पिता सी० आई० ई० बन गए हैं, पर इस बीच में उनका दिमाग काफी संभल गया है और वे अब राजभक्तों की अगली कतार में रहने के लिए उत्सुक नहीं मालूम होते। हद तो यह है कि उन्होंने नया नेमप्लेट नहीं बनवाया, यद्यपि उनके साथ जिन लोगों को उपाधि मिली है, उन सबने दावत भी कर दी और अपने-अपने नेमप्लेट भी बदलवा दिए।"

उषादेवी ने अन्त में यह लिखा था—" तुमने यह लिखा है कि मुझे अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए, पर जब तक तुम जेल में बने हो, तब तक स्वास्थ्य सुधरने की कोई सम्भावना ज्ञात नहीं होती। मैं दिन गिन रही हूं कि कब तुम्हारे छः महीने समाप्त होंगे।"

अगले पत्र में उषादेवी ने लिखा—" मैं एक मजेदार बात लिख रही हूं जिससे तुम्हें बहुत खुशी होगी, वह यह कि अभी हाल में मिस्टर स्मिथ ने अमन सभा की एक बैठक बुलाई थी जिसमें तुम्हारे पिता जी को पता लगा कि कुछ ऐसे आदमी भी अमन सभा के सदस्य बनाए गए हैं जो जेल गए थे पर माफी मांगकर छूट आए हैं।

" मिस्टर स्मिथ ऐसे लोगों को वीर के रूप में पेश करना चाहते थे, पर तुम्हारे पिता जी एकदम बिगड़ गए और बोले—जिस सभा में ऐसे लोग मौजूद हैं और जिस संस्था के वे सदस्य हैं, मैं उस सभा तथा उस संस्था से कोई ताल्लुक नहीं रखना चाहता।

" कहकर वे एकदम उठ खड़े हुए और स्मिथ के मनाने पर भी वहां नहीं बैठे। इसपर सारे पत्रों में बहुत लम्बे-लम्बे समाचार छपे हैं और कई पत्रों ने तो तुम्हारे पिता के साथ-साथ तुम्हारा भी परिचय छापा है, जिसकी कटिंग मैं साथ में भेज रही हूं।"

इस प्रकार जो कुछ भी हो रहा था, ठीक ही हो रहा था। प्रह्लाद के कारण हिरण्यकशिपु का हृदय-परिवर्तन हो रहा था। मां तो पहले ही से खद्दर पहनने लगी है।

पर यदि किसी विषय में वह चिन्तित रहता था, तो श्यामा के सम्बन्ध में।

यह गुत्थी कुछ सुलझती नहीं थी। श्यामा पर किसी तरह दोष नहीं मढ़ा जा सकता, पर सारी बातें कैसे भुलाई जा सकती थीं ? वह रूपवती से लड़कर क्यों चली गई ? आखिर रूपवती एक सम्भ्रान्त महिला थी, उसके यहां रहकर भी तो वह राष्ट्रीय बालिका विद्यालय में काम कर सकती थी। फिर उसने त्रिलोचन और पता नहीं कौन-कौन-से संदिग्ध लोगों के साथ रहना पसन्द किया।

राजेन्द्र इस विषय पर जितना भी सोचता, गुत्थी और भी उलझ जाती थी। तो क्या वह मां की बात मान ले ? राजनीति है तो ऐसी ही चीज़ जिसमें कोई किसीका नहीं रहता। पता नहीं श्यामा ने अब कौन-से विचार अपनाए हैं। वह पत्र भी तो लिख सकती थी। त्रिलोचन ने यह तो बतलाया होगा कि चोरी से जेल में पत्र भेजा जा सकता है।

श्यामा ने पत्र नहीं लिखा, इसका मतलब यह भी तो हो सकता है कि वह अपने को अब उसके योग्य न समझती हो। या उसका मन अब त्रिलोचन ऐसे किसी व्यक्ति से लग गया हो। कुछ कहा नहीं जा सकता। गत महीनों में उसने लोगों को कुछ ऐसा पलटा खाते हुए देखा था कि मनुष्य-चरित्र पर उसका भरोसा उठ गया था। भगवतीचरण कितना जोशीला था, कितनी बढ़-बढ़कर बातें करता था और वह इस तरह माफी मांग गया। केवल भगवतीचरण ही क्यों ? कई जोशीले लोग माफी मांग गए।

२६

इधर घटनाएं द्रुत गति से घटित हो रही थीं। महात्मा गांधी नें पहली फरवरी १६२२ को उस समय के वायसराय को परिस्थिति समझाने के लिए एक पत्र लिखा जिसमें यह साफ-साफ कह दिया गया कि वम्बई के सूरत ज़िले के वारदोली ताल्लुके में टैक्स बन्दी करने का फैसला कर दिया गया है।

इस खबर के मिलते ही जेल में जो राजनैतिक कैदी बन्द थे, उनकी नसों में एक बिजली-सी दौड़ गई। यह खबर विशेषकर इस कारण और भी पसन्द की गई कि इसमें यह कहा गया था कि इस पत्र के सात दिन के अन्दर सरकार जितनी ज़ब्तियां और जुर्माने आदि कर चुकी थी उन्हें वापस दे दे, और साथ ही जेल में बन्द राजनैतिक कैदियों को छोड़ दे। पत्र में यह कहा गया था कि यदि सरकार ने ऐसा किया तो उस हालत में वार-दोली तथा अन्य स्थानों में सत्याग्रह स्थगित करने की सलाह दी जा सकती है।

यद्यपि ३१ दिसम्बर को स्वराज्य नहीं हुआ था, पर इस पत्र ने वह काम किया जिससे पहले के सारे घाव तो भर ही गए, लोग पहले से और भी स्वस्थ अनुभव करने लगे। फौरन ही एक सभा बुलाई गई और महात्मा गांधी पर नये सिरे से भक्ति और श्रद्धा का निवेदन किया गया।

मौलाना इकरामुल्ला ने कहा—यह तो मैं पहले से ही जानता था कि महात्मा गांधी कोई बड़ी बात सोच रहे हैं। ऐसा महान व्यक्ति भला अपने साथियों को जेल भेजकर चुप कैसे बैठ सकता था, पर उन्हें तो सारे मुल्क को अपने साथ ले जाना था। अब ब्रिटिश सरकार और हममें आखिरी लड़ाई होकर रहेगी।

बाबू आनन्दकुमार ने कहा—यहां हमें वह बात याद आती है, जो भगवान बुद्ध के जीवन में घटित हुई थी। जब उन्होंने दीर्घ उपवास के बाद अपने साथियों से बताया कि मध्यम मार्ग में ही श्रेय है, तो वे उन्हें छोड़कर चल दिए, पर बाद में चलकर ये ही पांच साथी उनके प्रथम पांच अनुयायी बने। इसी प्रकार से जो भाई भीतर-भीतर महात्मा गांधी से इसलिए असंतुष्ट थे कि वे करबन्दी चलाकर सरकार को बेकार क्यों नहीं कर देते, अब वे ही देख सकते हैं कि महात्मा गांधी किस तरफ जा रहे हैं।

सभा बहुत ही सफल रही और लोग बहुत ही प्रसन्न हुए, पर शायद अगले ही दिन या दूसरे दिन ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गांधी के पत्र का उत्तर दिया। उसमें यह कहा गया कि सरकार की दमन नीति बिल्कुल सही और उचित है, सरकार दमन करना नहीं चाहती, पर नेताओं ने ही उसे दमन के लिए मजबूर किया है।

इस खबर से कुछ लोगों को, जिन्होंने यह समझ रखा था कि वे फौरन ही कारामुक्त हो जाएंगे, कुछ निराशा अवश्य हुई, पर दूसरों ने इसपर प्रसन्नता ही प्रकट की। ऐसे लोगों ने कहा—हमें भीख नहीं लेनी है, हम जो कुछ लेंगे अपने अधिकारों से लेंगे। जो लोग एक हद तक निराश हुए थे, वे भी जल्दी ही दूसरों की कतार में आ गए। बात यह है कि वास्तविक रूप से निराशा का कोई कारण नहीं था। जब तक लड़ाई जारी रहती है, तब तक निराशा का कोई कारण नहीं रहता।

इधर जेलों में सरकार कैदियों के वर्गीकरण की बात को आगे बढ़ा रही थी, उसमें एक सूक्ष्म चाल थी जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है यानी इस प्रकार उनमें भेद-भाव उत्पन्न करने की चेष्टा की गई। इसके अतिरिक्त साधारण स्वयंसेवकों को इस प्रकार नेतृत्व से वंचित किया गया।

एक सभा महात्मा जी को बधाई देते हुए तथा सत्याग्रह को आगे बढ़ाने की कामना व्यक्त करते हुए अभी समाप्त ही हुई थी कि आनन्द-कुमार, रघुवंशनाथ, कुमारानन्द, छबलानी, इकरामुल्ला, बन्देअली, अध्यापकप्रसाद, राजेन्द्र तथा आठ-दस और सूझ-बूझ वाले नेतृस्थानीय

लोग फाटक पर बुलाए गए।

जेल के इतिहास में यानी इस जेल के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था। रविवार के दिन बहुत-से लोग एकसाथ मुलाकात के लिए बुलाए जाते थे, पर उस बुलावे का रंग-रूप तथा तौर-तरीका अलग होता था। उसमें स्पष्ट मालूम हो जाता था कि लोग मुलाकात के लिए जा रहे हैं। और यह भी पता लग जाता था कि बाहर से मुलाकात के लिए कौन-कौन-से लोग किस-किससे मिलने आए हैं।

पर आज तो रविवार भी नहीं था। जब नवम्बर माफी मांगकर चला गया था, और राजनैतिक कैदियों को फौरन ही खबर हो गई थी, तब मंगरू तथा अन्य कई कैदी जिनके सम्बन्ध में जेल-अधिकारियों को यह सन्देह था कि ये राजनैतिक कैदियों को खबरें पहुंचाते रहते हैं, उन्हें केन्द्रीय जेल में भेज दिया गया था।

इसलिए अब यह मालूम भी न हो सका कि आखिर बात क्या है। लोगों के मन में यह शंका हुई कि आखिर क्या बात है कि केवल नेता ही नेता बुलाए गए हैं। फौरन सब राजनैतिक कैदी एकत्र हो गए और कुछ लोग यह कहने लगे कि दाल में काला जरूर है, इसलिए किसीको फाटक पर नहीं जाना चाहिए।

कहीं सरकार इन लोगों को बेंत तो नहीं लगाना चाहती है। बात यह है कि इन दिनों केन्द्रीय जेल में कुछ राजनैतिक कैदियों को बेंतसे पीटे जाने की खबर भी आई थी। एक मनचले ने यह कह दिया कि शायद ये लोग रिहा कर दिए जाएं, जिससे दूसरे कैदियों में निराशा का वातावरण पैदा हो।

जो लोग बुलाए नहीं गए थे उनकी संख्या बहुत अधिक थी और वे ही अधिक शंकित भी थे। कोई बाकायदा सभा तो हुई नहीं, पर यह निर्णय हुआ कि जब तक यह न मालूम हो जाए कि ये लोग किसलिए फाटक पर बुलाए जा रहे हैं तब तक कोई न जाए।

राजेन्द्र ने इसपर लोगों को समझाया—कहीं हम इसपर कायर न समझे जाएं।

पर राजेन्द्र के समझाने का कोई असर न हुआ। लोग अपनी ज़िद

पर डटे रहे।

थोड़ी देर में खैरातनबी स्वयं आया और उसने बुलाए हुए लोगों को फाटक पर चलने के लिए कहा। वह बोला—आप लोग बिना कारण शंकित हो रहे हैं। इन लोगों को दूसरी जेल में भेजा जा रहा है, वहां इनके साथ विशेष कैदियों का व्यवहार किया जाएगा।

इस बात के सुनते ही कैदियों में एक बार पहले से अधिक हलचल मची। जिन लोगों को विशेष व्यवहार मंजूर हुआ था, वे चुप रहे, पर दूसरे लोग यह कहने लगे—जब हम लोगों ने एक-सा काम किया है, तो सब लोगों के साथ एक ही सा व्यवहार भी होना चाहिए। सरकार की यह भेद-नीति है, हमें इसका शिकार नहीं होना चाहिए।

खैरातनबी ने जले पर जान-बूझकर नमक छिड़कते हुए यह कहा—हम तो हुक्म के ताबेदार हैं, इस बारे में हमारा कुछ कहना सही नहीं है, पर जहां तक मेरी समझ में आता है आप लोगों की यह ज़िद गलत है। बाहर भी तो आप लोगों की हैसियत अलग-अलग है, कोई हवेली में रहता है तो कोई झोंपड़ी में, कोई इत्र से नहाता है तो किसीको पानी भी मयस्सर नहीं होता।

एक ने कहा—यह तो पुरानी बात है, स्वराज्य होने पर यह स्थिति थोड़े ही रहेगी।

आनन्दकुमार ने देखा कि स्थिति गम्भीर रूप धारण कर रही है, इसलिए उन्होंने सबको सम्बोधित करते हुए कहा—आप लोगों ने मुझे डिक्टेटर बनाया है, पहले मुझे बात कर लेने दीजिए। यदि मेरी बात से आप संतुष्ट न हों, तो जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं।

कहकर उन्होंने खैरातनबी से कहा—मान लीजिए कि जिन लोगों के साथ ब्रिटिश सरकार ने विशेष व्यवहार का निश्चय किया है, वे विशेष व्यवहार लेने से इनकार कर दें, तब तो हमारे दूसरे जेल में भेजे जाने का कोई प्रश्न नहीं उठता ?

खैरातनबी इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं था, सच तो यह है कि इसका उत्तर देना उसकी सामर्थ्य से बाहर था। बोला—मुझे तो आप लोगों को फाटक पर ले जाने का हुक्म है, इसके अलावा मैं कुछ

भी नहीं जानता।

पर आनन्दकुमार ने कहा—तो आप मेजर हार्पर या मिस्टर स्मिथ जिससे भी उचित समझें, जाकर यह कहें कि जिन लोगों पर ब्रिटिश सरकार ने यह कृपा की है, वे उस कृपा को लेने से इनकार कर रहे हैं, अब आगे क्या हो, यह उनसे पूछ लीजिए।

अन्त में खैरातनबी को लौट जाना पड़ा। मेजर हार्पर सारी बात सुनकर मिस्टर स्मिथ के बंगले पर पहुंचे।

सारी बातें सुनकर मिस्टर स्मिथ ने कहा—इसमें कोई तबदीली नहीं हो सकती। क़ैदी हमें हुक्म नहीं दे सकते। जैसे भी बन पड़े आप हुक्म की तामील कीजिए।

इसलिए मेजर हार्पर लौट आए। जेल के दफ्तर में खैरातनबी के साथ मेजर की देर तक बातचीत होती रही।

इसके बाद जेल का बड़ा जमादार बुलाया गया। सहसा सीटी बजाकर अलार्म की घंटी बजा दी गई। क़ैदियों ने कहा, पगली हो गई। सब अपनी-अपनी बैरकों की ओर भागे। पन्द्रह मिनट के अन्दर सब बैरकों के दरवाज़ों पर ताले पड़ गए।

राजनैतिक क़ैदी समझ गए थे कि यह हमला उन्हींके विरुद्ध है। वे ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाने लगे।

इसके बाद मेजर हार्पर स्वयं एक पूरी गारद के साथ उस बैरक में गए जिसमें आनन्दकुमार, राजेन्द्र और वन्देअली थे। वह बैरक खोली गई और इन तीनों से कहा गया कि वे फाटक पर चले चलें।

पर इन तीनों व्यक्तियों ने मेजर हार्पर का हुक्म मानने से इनकार कर दिया। इसपर गारद के लोगों ने उन्हें पकड़कर बाहर ले जाना चाहा। पर वे ज़मीन पर लम्बे-लम्बे लेट गए। तब अस्पताल से स्ट्रेचर मंगाए गए और उनपर उन्हें ज़बरदस्ती लेटाकर बाहर निकाला गया।

फिर बैरक में ताला डाल दिया गया। नारेपहले की तुलना में और ज़ोर-ज़ोर से लगाए जाने लगे। अन्य नारों के साथ हार्पर और खैरातनबी की क्षय का नारा भी लगने लगा।

इसी प्रकार सारी बैरकें खोली गईं और उनमें से वे सब लोग जिन्हें निकालना था निकाले गए।

ऐसा करते-करते घंटों लग गए। अन्तिम बैरक जिसमें रघुवंशनाथ थे खोली गई। पर इस समय तक लोगों का पारा इतना तेज़ हो चुका था कि वे अहिंसा से हाथापाई पर उतर आए और जब रघुवंशनाथ को स्ट्रेचर पर चढ़ाया जाने लगा राजनैतिक कैदियों और वार्डरों में बाकायदा झपटा-झपटी और मारपीट हुई। कई राजनैतिक कैदी घायल हो गए। एक ार्डर को भी बुरी तरह चोट आई।

रघुवंशनाथ को भी खरोंचें लगीं, पर वे फाटक पर पहुंचाए गए।

इसके बाद घायल राजनैतिक कैदी भी अस्पताल भेजे गए, जिसपर एक बार फिर मारपीट हुई और घायलों की संख्या में दो की वृद्धि हुई।

आनन्दकुमार आदि फ़ैज़ाबाद जेल भेज दिए गए। यद्यपि ये लोग अपने स्थान के प्रतिष्ठित लोग थे, पर इन्हें हथकड़ियों में जकड़कर रखा गया और कुछ खाने को नहीं दिया गया। इस प्रकार से विशेष व्यवहार देने के आदेश को कार्यान्वित किया गया।

२७

फ़ैज़ाबाद जेल में परिस्थिति ही बिल्कुल दूसरी थी।

वहां जो लोग आए थे, वे अपने-अपने ज़िले के उसी प्रकार से नेता थे, जिस तरह आनन्दकुमार, राजेन्द्र, इकरामुल्ला आदि थे। जेलखाने के नियमानुसार बनारस से भेजे गए लोग अलग-अलग बैरकों में बांटकर रखे गए, जहां वे उसी प्रकार से डूब गए, जैसे नदी सागर में अपना अस्तित्व खो देती है।

उन्हें यह परिस्थिति बिलकुल पसन्द नहीं आई।

आनन्दकुमार ने फ़ैज़ाबाद में पहुंचते ही यह कहा कि मैं अपने लिए विशेष व्यवहार नहीं चाहता। राजेन्द्र आदि जो उनके साथ आए थे, इस मामले में उनका साथ देने के लिए तैयार नहीं हुए।

इन लोगों का कहना था—यहां तो सभी कैदी ऐसे हैं जिन्हें विशेष व्यवहार मिला हुआ है, फिर हमें इस झंझट में पड़ने की ज़रूरत ही क्या है? इसके अतिरिक्त यह भी तो देखना चाहिए कि सभी बड़े नेता, जो इस समय जेलों में हैं, विशेष व्यवहार पा रहे हैं। उनमें से किसी-ने विशेष व्यवहार लेने से इनकार किया हो, ऐसा तो सुनने में नहीं आया।...

आनन्दकुमार ने कहा—मैं किसीको अपनी राय पर चलने के लिए नहीं कहता, पर मैंने बनारस जेल में जो दृष्टिकोण अपनाया था, उससे मैं अलग रहना नहीं चाहता।

आनन्दकुमार ने जब विशेष व्यवहार का खाना खाने से इनकार किया तब उन्हें कोठरी में बन्द कर दिया गया, और वे सब लोगों से अलग कर दिए गए। डेढ़ दिन के अनशन के बाद उन्हें मामूली कैदियों का खाना

दिया गया, इसपर उन्होंने अनशन तोड़ दिया।

इस बात पर जेल में राजनैतिक कैदी यही कानाफूसी करते रहे—यह नेतागिरी की चाल है। इस तरह ये अपनी लीडरी चमकाना चाहते हैं।

आनन्दकुमार के कान में भी यह बात पहुंची, पर उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की। जब राजेन्द्र ने मौलाना इकरामुल्ला से शिकायत के रूप में यह कहा, तो मौलाना बोले—उन्होंने जो बात की है, वह बेशक सही है, पर इस तरह सबसे अलग होकर कोई काम करने में मुझे अकीदा नहीं है। अच्छा होता, वे सबकी राय ले लेते।

यहां यह बता देना चाहिए कि आनन्दकुमार से पहले ही कई लोग इस प्रकार की मांग कर चुके थे और उन्हें मामूली कैदियों का व्यवहार मिलता था। ये सब लोग कोठरियों वाली बैरक में थे और साधारण राजनीतिक कैदी उन्हें झक्की समझते थे, पर ये लोग इसकी परवाह नहीं करते थे। इनमें से अधिकतर पढ़ने-लिखने या भजन-पूजन करने वाले लोग थे, इसलिए उनके बारे में कौन क्या कहता है, और कौन क्या नहीं कहता, इस बात पर उन्हें दिमागपच्ची करने की फुर्सत नहीं थी।

बाहर से खबरें बनारस की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह आ रही थीं। यहां तो कई दैनिक चले आते थे, पर उसका पढ़ना-लिखना कुछ विशिष्ट लोगों तक ही सीमित रहता था। पर एक दिन पता नहीं क्या हुआ, जो तीन अखबार आते थे, वे आते ही दबा लिए गए और फिर किसीने यह बताया ही नहीं कि आज क्या खबर थी।

राजेन्द्र बनारस जेल के नेताओं में गिना जाता था, पर यहां सभी उसकी तरह थे। जब उसने देखा कि अखबार आते ही लापता हो गए और कुछ भी खबर नहीं दी गई, साथ ही उसने देखा कि यहां के नेताओं के चेहरे लटके हुए हैं, तो वह ताड़ गया कि कोई न कोई बात अवश्य हुई है।

तो क्या महात्मा जी गिरफ्तार हो गए?

यदि ऐसा ही हो, तो इसमें छिपाने की क्या बात थी? नेताओं से पूछा, तो वे कुछ नहीं बोले। पर उनके चेहरों से यह स्पष्ट था कि कोई न

कोई गम्भीर बात अवश्य हुई है।

बात यह हुई थी कि १५ फरवरी को जिस समय गोरखपुर के पास चोरीचौरा में एक कांग्रेसी जुलूस निकल रहा था, उस समय उसने २१ पुलिस वालों तथा एक दारोगा को एक थाने में खदेड़ दिया और फिर इस थाने में आग लगा दी गई, जिसके फलस्वरूप ये बाईस आदमी जिन्दा जल गए। इसीपर दुखी होकर गांधी जी ने यह आज्ञा दी थी कि फौरन ही सारा आन्दोलन बन्द कर दिया जाए क्योंकि अभी लोग इसके लिए तैयार नहीं थे।

इस खबर को छिपाने का उद्देश्य यह था कि कहीं लोगों में उत्साह का नितान्त अभाव न हो जाए और माफी मांगकर छूटने वालों की संख्या में वृद्धि न हो जाए। पर लाख कोशिश करने पर भी यह खबर धीरे-धीरे टूटी-फूटी हालत में सब कैदियों तक पहुंच गई। बात यह है कि नेताओं को भले ही इस खबर को छिपाने में दिलचस्पी रही हो, पर जेल वालों को ऐसी खबर दबाने में कोई स्वार्थ नही था।

जब खबर कुछ हद तक खुल गई, तो नेताओं ने सारी बात बता दी। लोग इससे बहुत निराश हुए। नेताओं ने लोगों को धीरज बंधाना शुरू किया और सभाएं आदि संगठित की गईं। पर अधिकांश नेता स्वयं भी इस बात से दुखी थे, इस कारण उनका समझाना कोई विशेष फलप्रद नहीं हुआ। लोग खुल्लमखुल्ला नेताओं की और साथ-साथ महात्मा जी की भी आलोचना करने लगे।[1]

जेल-जीवन अब बिल्कुल असहनीय हो गया। कुछ लोग तो बहुत ही मुरझा गए और भविष्य उनके निकट अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। जेल के अन्दर अब कोई अनुशासन नहीं रहा। कोई किसीको न तो मानता था और

---

१. यहां यह बता दिया जाए कि श्री जवाहरलाल नेहरू भी गांधी जी के इस कदम का समर्थन नहीं कर पाए थे। उन्होंने इसपर बहुत लम्बी आलोचना लिखी जो उनकी आत्मकथा में पढ़ी जा सकती है। उसमें से एक वाक्य यों है, "क्या एक दूर देहात का गांव और उसमें की उत्तेजित किसानों की एक भीड़ हमारे स्वतन्त्रता-युद्ध को कम से कम कुछ समय के लिए बन्द कर देने के योग्य थी?...."

न कोई किसीकी इज़्ज़त ही करता था।

ग्रानन्दकुमार ने सारी बात सुनकर मौन धारण कर लिया और जब बहुत मजबूर किए गए तो उन्होंने केवल इतना ही कहा—हमारा काम हुक्म मानना है, ग्रालोचना करना नहीं।

राजेन्द्र ने भी ऊपर से कोई ग्रालोचना नहीं की, यद्यपि उसका मन संशय से पूर्ण था। इन्हीं दिनों उषादेवी का एक पत्र ग्राया, जिसमें उन्होंने लिखा था :

"तुम्हें जो दुःख पहुंचा, वह ग्राश्चर्यजनक नहीं है। जो कुछ भी हो तुम्हारे ग्रकेले के हाथ में कुछ भी नहीं है। इसलिए तुम जो कुछ कर सकते हो, वह यही है कि छूटकर ग्रपना काम करो। इसी बीच में मैंने एक लड़की देख रखी है जो शायद तुम्हें पसन्द ग्राए। वह ग्रच्छे घराने की है और तुम्हारे साथ उसका स्वभाव भी मिलेगा, ऐसी ग्राशा है।"

राजेन्द्र ने यह पत्र पढ़ा तो उसका मन जाने क्यों निराशा और कड़वे-पन से भर गया। मां पहले भी ऐसी ही बातें लिखा करती थीं, पर कभी ऐसा तो नहीं हुग्रा। भविष्य के सम्बन्ध में कुछ सोचने को जी नहीं चाहता था। सारा भविष्य ग्रंधकारमय ज्ञात हो रहा था।

राजेन्द्र ने चिट्ठी फाड़ दी (ऐसा वह हमेशा करता था क्योंकि चोरी से ग्राई हुई चिट्ठियों को फाड़कर नष्ट कर डालने की परिपाटी उसने त्रिलोचन से सीखी थी) और वह टहलता-टहलता उन कोठरियों में चला गया जहां ग्रानन्दकुमार रहते थे। उसने उन्हें पत्र की बात तो नहीं बताई पर यह कहा—ग्रब तो समय काटे नहीं कटता। पता नहीं चित्त शान्त क्यों नहीं होता···

ग्रानन्दकुमार ने ध्यान से राजेन्द्र का चेहरा देखा, फिर बड़े स्नेह के साथ बोले—ऐसा होना स्वाभाविक है। जब तक मारपीट चलती रहती है तब तक चोट का पता नहीं लगता, हड्डियां भी टूट जाती हैं फिर भी लोग लड़ते रहते हैं, पर जब लड़ाई बन्द हो जाती है, खून ठंडा पड़ता है, तब धीरे-धीरे चोट उभरती है। ज्यों-ज्यों समय गुज़रता है, त्यों-त्यों जगह-जगह टीस उठती है, कहीं फूलता है तो कहीं ग्रकड़ता है। पर यह न समझो कि यह कोई स्थायी बात है। जब सारी चोटें मालूम हो जाती

हैं, तब धीरे-धीरे आरोग्य की प्रक्रिया चालू होती है। सूजन अपनी हद तक पहुंचकर फिर कम होने लगती है, दर्द और देह की अकड़न ठीक होने लगती है, इसलिए कोई चिन्ता की बात नहीं है।

कहकर आनन्दकुमार मुस्कराए मानो वे विज्ञान का कोई नियम बता रहे हों, कुछ रुककर बोले—आजकल लोग पहलवानी से दूर रहते हैं, मैं जब बच्चा था तो एक पहलवान मुझे कुश्ती लड़ाने के लिए नौकर था। आरम्भ में वह मुझे अखाड़े की मिट्टी में दो-एक बार पटककर छोड़ देता था। कहता था जाओ, काफी हो गया। पर जब दम बढ़ने लगा तो उसी-के अनुसार पकड़ भी लम्बी होने लगी। सो मैं यह समझता हूं कि महात्मा जी ने जाति को कुश्ती का यह पहला सबक दिया है। अब की बार इतने दिनों की पकड़ ही काफी रही, आगे ज्यों-ज्यों जाति का दम बढ़ेगा, त्यों-त्यों पकड़ भी लम्बी होती जाएगी···

पर राजेन्द्र अधीर होकर बोला—पर हमारी जाति का तो दम अभी फूला नहीं था। बराबर लोग जेलों में आते जा रहे थे और आन्दोलन का दायरा बढ़ता ही जा रहा था।

—ऐसा तो तुम्हें मालूम हो रहा था। पर जो उस्ताद तुम्हें लड़ा रहा है, उसे क्या मालूम हुआ, यह असली बात है। नया पहलवान अपने दम के सम्बन्ध में गलत अनुमान लगा सकता है, वह समझ रहा है कि ठीक लड़ रहा है, पर असली बात कुछ और हो सकती है। ऐसे विषय में उस्ताद पर ही सारी बात छोड़ देनी उचित होगी।

राजेन्द्र बोला—इसका अर्थ यह हुआ कि सारी बात उस्ताद पर ही छोड़ी हुई है।······

आनन्दकुमार ने उसके मुंह से बात छीनते हुए कहा—अवश्य, इसमें भी कोई शक है? जब जिसे उस्ताद माना जाए, उसकी बात पर पूरा विश्वास रखा जाए, तभी काम बनता है। हमारे राष्ट्रीय चरित्र में इस बात की बड़ी कमी है कि हम सही ढंग से अनुयायी नहीं बन पाते। या तो हम लोगों में भेड़ियाधसान है, जिसमें हम बिलकुल सोचते ही नहीं या फिर पग-पग पर दार्शनिक ढंग से संदेह पैदा करके काम से अलग रहते हैं। दोनों ही समान रूप से वर्जनीय हैं।

राजेन्द्र इसी प्रकार देर तक बातचीत करता रहा। जब वह उनसे बातचीत करके निकला तो उसका मन पहले से शान्त था।

पर जब वह थोड़ी दूर निकल गया तो उसे बनारस जेल की वह बात याद आई, जब श्यामा की बात को लेकर आनन्दकुमार राजेन्द्र पर बिगड़ पडे थे। वह दृश्य याद आते ही उसका मन पहले से अधिक दुखी हो गया। श्यामा का क्या होगा? वह इस सम्बन्ध में क्या करे? इस विषय में वह जितना ही सोचता गया, गुत्थी उतनी ही और उलझती गई।

फरवरी के अन्त में डाक्टर अन्सारी के मकान पर जेल के बाहर बचे हुए नेताओं की एक छोटी-सी बैठक हुई थी, जिसमें महात्मा जी ने यह बताया था कि पण्डित मोतीलाल और लाला लाजपतराय ने चौरीचौरा के कारण आन्दोलन स्थगित किए जाने की कड़ी आलोचना करते हुए पत्र लिखे हैं। इसके अतिरिक्त और भी लोगों ने अपने विचार बताए। जेलों के असन्तोषपूर्ण वातावरण का भी उल्लेख किया गया पर महात्मा जी ने इन सारी बातों के उत्तर में केवल एक ही बात कही कि जेल में कैदी लोगों को नागरिक दृष्टि से मरा हुआ समझना चाहिए, और वे बाहर के लोगों को सलाह देने का दावा नहीं कर सकते।[१]

यह खबर किसी न किसी रूप में मुलाकातों तथा पत्रों के ज़रिये से राजनीतिक कैदियों तक पहुंची। इससे एक बार फिर तर्क-वितर्क शुरू हो गए।

अब तो बहुत-से राजनीतिक कैदी बराबर छंट भी रहे थे। उनके द्वारा जेलों के असंतोष की खबर बाहर पहुंच रही थी। पर कुछ दिनों के बाद मार्च के प्रथम पक्ष में महात्मा जी की गिरफ्तारी हुई जिससे असंतोष कोई रूप नहीं ले सका। बाद की घटनाओं पर यहां जाने की आवश्यकता नहीं है। बस इतना ही कहना यथेष्ट है कि लोगों ने यह मान लिया कि जो हो रहा है, वह भले ही वह न हो जो होना चाहिए, पर वह हो रहा है जो इन परिस्थितियों में हो सकता है।

१. देखिए सीतारमैया लिखित—'कांग्रेस का इतिहास'।

जो लोग किसी भी तरह महात्मा जी की आलोचना करते थे उनको बराबर यह मुंहतोड़ उत्तर दिया जाता था—यह बात सही है या नहीं कि असहयोग आन्दोलन के कारण देश बहुत आगे बढ़ गया, हमारी जनता पहले से अधिक उद्बुद्ध हो चुकी है, इसके अतिरिक्त एक देशव्यापी संगठन की नींव भी पड़ चुकी है।

ऐसी बात से सब लोग संतुष्ट नहीं होते थे, पर महात्मा जी की गिरफ्तारी के कारण कहने के लिए कुछ रह भी नहीं गया था।

राजेन्द्र की रिहाई का दिन अब पास आ चुका था। वह अपेक्षाकृत खुश था और सब लोगों से जाकर यह वायदा कर रहा था कि वह सबके घरों में जाएगा और सबका सन्देश पहुंचाएगा। जब वह रिहाई के दिन सवेरे आनन्दकुमार से मिलने के लिए आया तो अन्य बातें कहने के बाद आनन्दकुमार ने स्वयं ही श्यामा की बात छेड़ दी।

बोले—मैंने बहुत सोचा है, मैं इसी नतीजे पर पहुंचा कि यदि तुममें और श्यामा में विवाह होगा, तो तुम लोग सुखी नहीं हो सकते। तुम्हारा परिवार तुम्हें सारी बातों के लिए क्षमा कर देगा, पर यदि तुम श्यामा के साथ विवाह कर लोगे तो वह तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगा।

राजेन्द्र इस सम्बन्ध में और भी ब्यौरे में बातें करना चाहता था, पर आनन्दकुमार ने विषय एकदम बदल दिया और लौटकर उसपर फिर आए ही नहीं।

राजेन्द्र जब जेल से छूटा तो उसने फाटक के बाहर उषादेवी को नौकरों के साथ देखा। मां और बेटा दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बंध गए। दोनों की आंखों में आंसू थे। मां ने कहा—मैंने तुझे एक दिन घर से निकाल दिया था, आज मैं तुझे घर में बुलाने के लिए आई हूं। तेरे पिता जी की उपाधि-प्राप्ति पर पार्टी नहीं हुई, पर तेरे छूटने पर पार्टी होगी, जिसमें तेरी सूची के अनुसार लोग बुलाए जाएंगे।...

इसके बाद उषादेवी ने अपने तथा बेटे के आंसू पोंछकर कहा—फिर तेरी शादी होगी, तेरे लिए मैंने एक अच्छी-सी लड़की चुन रखी है।

मां और बेटा साथ-साथ गाड़ी पर सवार हुए। उन लोगों ने यह नहीं देखा कि पास ही एक बरगद के नीचे श्यामा खड़ी थी और वह उन

लोगों की सारी बातचीत सुन रही थी। वह अभी यह तै नहीं कर पाई थी कि वह राजेन्द्र से मिले या नहीं, इतने में उसने वह शादी वाली बात सुन ली, फिर तो वह मुंह फेरकर चलने लगी।

जब वह कुछ दूर आगे निकल गई, तब पीछे से एक सफेदपोश जेल के वार्डर ने उसके पास आकर पूछा—आप ही का नाम श्यामादेवी है ?

—तुमने कैसे जाना ?—श्यामा ने कुछ रुखाई के साथ कहा।

—मैं आपको बनारस से जानता हूं। फिर भी पूछकर तसदीक कर लिया। पहले मैं बनारस जेल में वार्डर था। अब बदली पर यहां आया हूं।

श्यामा अभी सोच नहीं पाई थी कि क्या कहे। वह इस समय किसी भी औपचारिक ढंग की बातचीत के लिए तैयार नहीं थी। वह अकेले बैठकर कुछ सोचना चाहती थी।

पर वार्डर ने इधर-उधर ताककर उसे एक पत्र दिया। बोला—आनन्दकुमार जी ने यह पत्र आपके लिए दिया है।—कहकर वह मुस्कराया।

श्यामा को बहुत आश्चर्य हुआ। बोली—उन्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां पर हूंगी।

—वे तो तीन दिन से मुझसे आज के लिए बातचीत कर रहे हैं। उन्होंने मुझे विशेषकर इसलिए चुना कि मैं आपको जानता हूं···

वार्डर चला गया। कुछ दूर चलकर एक पेड़ के नीचे बैठकर श्यामा वह पत्र पढ़ने लगी।

पत्र यों था—

"आज मैं तुम्हारे साथ होना चाहता था। पर व्यक्तियों की समस्याएं पीछे रह जाती हैं और समष्टि की समस्याएं सामने आ जाती हैं। समष्टि की यात्रा के कारण कई बार व्यक्ति कुचल दिया जाता है, पर व्यक्ति का कदाचित् सबसे अच्छा उपयोग यह है कि वह समष्टि के लिए अपना जीवन न्यौछावर करे। इसीमें उसकी सार्थकता है, इसीमें उसका पूर्ण प्रकाश है।

"मैंने तुम्हें भी देखा है और राजेन्द्र को भी देखा, बहुत पास से देखा।

उसने अपने ढंग से त्याग किया है, पर वह चांदी है और तुम सोना, तपा हुआ सोना, वह सोना जिसका खरापन हर कसौटी पर प्रमाणित हो चुका है। इसलिए तुम दोनों का साथ होना अच्छा नहीं।

"राजेन्द्र ने बहुत बड़ा त्याग किया है, पर उसके सामने केवल राजनैतिक उद्देश्य है, बाकी मामलों में उसने प्रचलित कुसंस्कारों से मुक्ति नहीं पाई है। तुम्हें शायद वैयक्तिक जीवन में अब सुख न मिले, पर भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो सबसे बड़े त्याग होंगे, वे तुम्हारी तरह के त्यागों से ही बनेंगे। तुम हर समय यह याद रखना कि तुम्हारा त्याग सारी मानव-जाति के लिए है, उसका त्याग देश के लिए है। प्रतीक्षा करो, मैं जल्दी ही छूटने वाला हूं, तब तुम मुझसे सब तरह की सहायता प्राप्त कर सकोगी, यद्यपि मैं जानता हूं कि तुम्हें किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं है और तुम उन बातियों में से हो जिनसे दूसरी बातियां स्वयं प्रज्वलित होकर प्रकाश पैदा करती हैं।

तुम्हारे चाचा जी"

श्यामा ने यह पत्र पढ़ा और उसकी आंखों में आंसू आ गए। आनन्दकुमार ने जो कुछ लिखा है वह सही है, पर मन तो नहीं मानता। स्वतंत्र भारत के साथ-साथ उसके मन में एक छोटी-सी झोंपड़ी का चित्र भी बन रहा था, जिसमें केवल राजेन्द्र और वह होगी, पर अब जीवन की आंधी ने उस झोंपड़ी को तो उड़ा दिया रह गया केवल स्वतन्त्र भारत का चित्र।

क्या इतना ही जीने के लिए, आगे बढ़कर काम करने के लिए यथेष्ट है? क्या केवल इतना ही जान लेने से कुछ क्षतिपूर्ति होती है कि उसकी बाती से दूसरी सैकड़ों बातियां अपना प्रकाश प्राप्त करेंगी। वह तो हर प्रकार के त्याग के किए तैयार थी सिवा इस त्याग के, पर भारतमाता को इसी त्याग की आवश्यकता पड़ी।

अपने आंसू पोंछकर उस पत्र को अपने पाथेय के रूप में रखकर श्यामा उठ खड़ी हुई और चलती गई, चलती गई, चलती गई···

◇◇◇

आशा है, यह उपन्यास आपको रुचिकर लगा होगा। इसके बारे में हम आपके बहुमूल्य विचारों का स्वागत करेंगे। राजपाल एण्ड सन्ज़ का सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्कृष्ट प्रकाशनों से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया जाए, और यह सब आपके हार्दिक सहयोग पर निर्भर है। यदि आप कथा-साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हों तो हमारा उत्कृष्ट साहित्य मंगवाकर पढ़िए अथवा पुस्तकों का चुनाव करते समय हमें लिखिए। हम आपकी हर संभव सहायता करने का प्रयास करेंगे।